ੴ वाहिगुरू जी की फ़तहि ॥

191

भारत की आज़ादी में सिखों का योगदान

	सिख	गैर सिख
1. फाँसी मिली	93	28
2. उमर कैद	2147	499
3. जलियां वाले बाग में शहीद	799	501
4. बज बज घाट में शहीद	67	46
5. कूका लहर में शहीद	91	--
6. अकाली लहर में शहीद	500	--

6 रुपये

सिख मिशनरी कालेज (रजिः)
लुधियाना

सभी प्रकार के शुल्क भेजने का पता

सिख मिशनरी कालेज (रजि:)

1051/14, फील्ड गंज, लुधियाना - 141008 फोन : 0161-2663452

दिल्ली सब आफिस : C-135, मानसरोवर गार्डन,

नई दिल्ली - 110015 फोन : 011-25413986

जालन्धर आफिस : कंवर सतनाम सिंघ चैरिटेबल कंपलैक्स, माडल हाऊस रोड, बस्ती शेख, जालन्धर। फोन : 0181-2430547

Website : www.sikhmissionarycollege.net
E-mail : smcludh@satyam.net.in

Feb 2003 2000 Copies

भारत की आज़ादी में सिखों का योगदान

भारत में सिखों की आबादी यहाँ की कुल जनसंख्या का दो प्रतिशत भी नहीं है, पर देश की स्वतन्त्रता के लिये की गई कुर्बानीयाँ, देश स्वतन्त्रता की रक्षा के सम्बन्ध में निभाई जा रही ज़िम्मेवारी और देश के नव-निर्माण में इनकी ओर से किया गया योग दान बाकी सभी देशवासियों से कई गुना अधिक है। यदि यह कहा जाये कि आज देश की स्वतन्त्रता की रक्षा निर्भर ही केवल कलगीधर जी के वीर सपुत्रों पर करती है तो यह ना तो अतिशोक्ति है और न ही गलत।

भारत में सिखों की जनसंख्या भले आटे में नमक के बराबर भी नहीं हैं, पर देश स्वतन्त्रता के लिए सिखों की कुर्बानीयों का उल्लेख किए बिना देश स्वतन्त्रता का इतिहास लिखा ही नहीं जा सकता।

सिख कौम का इतिहास बताता है कि इस का जन्म ही केवल देश को विदेशी (जखणिओं) हमलावरों से स्वतन्त्र करवाने और देश वासियों को छूत-छात, ऊँच-नीच तथा बेकार के कर्म-काण्डों की अत्यधिक गुलामी से मुक्त कराने के लिए ही हुआ था।

भारत का इतिहास इस बात का गंवाह है कि यह देश अपने वसनीकों की अनैतिकता, चरित्र-हीनता, आपसी फूट और खुदगर्जी के कारण दो हज़ार सालों से कभी शकों और हूनों का, कभी गौरीयों और गज़नवियों का, कभी खिलज़ियों और तुगलकों का, कभी फरासियों या फ्रान्सीसीयों का, कभी लोधियों और मुगलों का, कहीं पूर्त गेज़ीयों और अंग्रेज़ों का गुलाम होता आ रहा था। यहाँ ही बस नहीं, ये पानी भरने वाले माशकीयों और गुलामों का भी गुलाम हो चुका है। इस लम्बी गुलामी ने इस देश की वीरता, स्वाभिमान और गैरत को स्थिल करके रख दिया था। यहाँ तक कि भारत में पहले विदेशी हमलावर मीर कासिम के समय ईस्वीं सन् 712 ई० से ही इस देश की गैरत और स्वाभिमान की चुनौती देनी आरम्भ हो गई थी और यहाँ के असली वारिसों और वसनिकों का काफीयां तंग किया जाने लगा। इस देश के हिन्दू तीर्थों और धर्म स्थानों की बेअदबी की जाने लगी। पूज्य भारती महा पुरुषों और "भगवानो" की मूर्तियों को तोड़ कर पैर मार-मार कर अपमानित किया जाता रहा। इस देश की धन सम्पत्ति ऊठों, बैलगाड़ियों, घोड़े, गाड़ियों, खच्चरों, ऊँठ गाड़ियों और गायों के ऊपर लद-लद कर ढो-ढो कर देश में से लूट-लूट कर ले जाती रही। भारत की सुन्दरियों को संसार भर में तोहफों की तरह भेजा जाता रहा और गज़नी के बज़ारों में ला जा कर एक-एक टके में बेचा

जाता रहा, पर इस ऋषियों-मुनियों और अर्जुन तथा भीम जैसे चक्रवर्ती राजाओं की संतानों से भरे हुए इस देश में से इस जबर और अत्याचार के विरुद्ध कोई बोल सकने की भी हिम्मत न कर सका। इस सभी को ईश्वर का हुक्म और भगवान की रजा मान कर के बर्दाश्त किया जाता रहा।

भारत का इतिहास इस बात का गवाह है कि 1526 तक पूरे आठ सौ पन्द्रह सालों तक यह ज़ुल्म होते रहे और गुरु नानक देव जी पहले सतिगुरु के जिन्होंने 1528 ई. में वक्त के मीर बाबर को जाबर कहा और उसकी हुकूमत को बुच्चड़ों की हुकूमत कह के इस जुल्म के विरुद्ध भारी प्रोटैस्ट किया। नतीजे के तौर पर उनको बाबर की जेल में चक्कीयां पीसनी पड़ी, पर बाबा जी की पीसी इन चक्कियों में बाबा नानक ने देश वासियों के दिल में छाये हुए गुलामी के डर की भावना को पीस दिया। देशवासियों को देश स्वतन्त्रता का अहसास करवाया और जगह-जगह जा कर "कलि काती राजे कसाई" हो गए का डंका दिया और "पाप की जंझ लै काबलो धाया जोरी मंगै दान वे लालो।" के ख़तरे का अलार्म दिया और "खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुस्तान डराया ॥ आपै दोस न देइ करता जम कर मुगल चढ़ाया" (आसामहला 1-360) की देश के कोने-कोने में खबर कर दी ओरि साथ ही देश स्वतन्त्रता सेनानियों की एक कौम की बुनियाद रख दी और देशवासियों के सीने में देश स्वतन्त्रता के जज्बे की जोती प्रज्वलित कर दी। आप ने ज़िल्लत और कीचड़ में गिरे हुए लोगों को झन्झोड़ कर ब्यान किया था :

जे जीवै पति लत्थी जाए ॥ सभ हरामु जेता किछु खाए ॥ (पन्ना १४२)

आप जी के उपरान्त आप के जा-नशीन नौ सतिगुरु साहिबान ने ज्योति को जलता रखे रहने का भार उठाया और इसे पूरी तरह निभाया, जिसके फलस्वरूप पाँचवें सतिगुरु गुरु अर्जन देव जी को इस देश स्वतन्त्रता की बलि वेदी पर सब से पहले अपने शरीर की आहुति देनी पड़ी। निरसन्देह देश स्वतन्त्रता के सबसे पहले शहीद थे—सतिगुरु गुरु अर्जन देव जी, जिनका शहीदी दिवस कौमी त्यौहार, सरकारी तौर पर मनाना चाहिए।

उनके बाद दूसरे शहीद थे गुरु तेग बहादुर जी और उनके सिख भाई मतीदास जी, भाई सती दास जी और भाई दयाला जी सतिगुरु गुरु गोबिन्द सिंघ जी के चार साहिबज़ादे और अनन्त सिखों ने स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए देश, धर्म के लिए अपनी जाने कुर्बान कीं।

सतिगुरु गोबिन्द सिंघ जी का तो सारा जीवन ही देश में से विदेशी ताकतों को बाहर निकालने और जुल्म का नाश करने की कठिनाइयों में ही लगा है। उनके बाद पूरी की पूरी सिख कौम ही उनके पद-चित्रों पर चलती हुई देश—स्वतन्त्रता आन्दोलन

की मुदई बनी हुई है। सिखों की धरती पंजाब ही देश भर में वो हिस्सा है जोकि सिखों ने सारा देश गुलाम हो जाने पर भी 1849 ई॰ तक अंग्रेज़ों के मनहूस पैर पड़ने से बचाए रखा।

सिखों को देशभक्ति की भावना जन्म घुट्टी के तेरि पर दी गयी है। यही कारण है कि देश स्वतन्त्रता का कोई ऐसा आन्दोलन नहीं, जिसमें इन्होंने सबसे आगे होकर कुर्बानियां दे कर चमत्कार न दिखायें हों।

1824 ई॰ के बर्मा युद्ध के इतिहास पर नज़र मारने पर पता चलता है कि अंग्रेज़ों के पास उस समय सिख सैनिकों की बहुसंख्यक कम्पनी 47, नेटिव इनफैक्न्टरी थी, जिसने बर्मा के विरुद्ध, जो उस वक्त भारत का ही एक अंग था, लड़ने से इन्कार कर दिया था और 1824 में बेरिकपुर पहुँच कर बरमी भाईयों के विरुद्ध लड़ने के लिए आगे बड़ने से इन्कार कर दिया और विद्रोह खड़ा कर दिया। 11 नवम्बर 1824 को गोरा फौजों की सहायता के साथ, सर एडवर्ड ने इस पूरी की पूरी इन्फैन्टरी को घेर लिया और तोपें रख के सारे फौजियों को भून दिया जो वहाँ से जाने बचा कर भागे, उनमें से बहुत हुगली में बह गए और जो बचे उनमें से बहुतात को बन्दी बना लिया गया और सभी को फाँसी पर लटका दिया गया। यह विद्रोह भड़काने की पूरी ज़िम्मेदारी रसालदार सूर सिंघ, बलाका सिंघ और जाता सिंघ और एक बंगाली अफ़सर मिस्टर दास पर थोपी गयी। (ग्लैस्गो हैरल्ड—कलकत्ता 3-11-1825)

इस विद्रोह में 879-880 फौजी या मारे गये जा फाँसी चढ़ाए गए। इनमें पाँच सौ से ज्यादा केवल सिख थे। ये सिख यू. पी. बिहार और बंगाल के निवासी थे।

1824 में ही रुड़की के पास कुन्जा के तालुकेदार विजय सिंघ, जो कि सहारनपुर के गुजर नरेश राम दयाल का भतीजा था, (ये घराना गुरु घर का सेवक घराना था और इस के बड़े-बुजुर्गों को सतिगुरु नानक पातशाह की चरन-धूल प्राप्त हुई थी) और इस इलाके का प्रसिद्ध देशभक्त कलवा (जो केवल अंग्रेज़ों को कत्ल करता था, सरकारी खज़ाना लूटता था और अंग्रेज़ों के बंगलों पर डाके डालता और जंगलों में रहता था) की अंग्रेज़ों के विरुद्ध जुलाई 1824 ईसवीं में खड़ी की गई बगावत में गोरा और गोरखा फौज़ों के साथ लड़ते हुए 200 देश-भक्त शहीद हुए, जिनमें से 89 सिख थे। 47 को अंग्रेज़ी सरकार ने फाँसी की सजा दी, जिनमें से 17 सिख थे और कई सौ देशभक्तों को जलावतन किया, उमर कैद की सजाएँ दीं और बन्दी बनाया। इनमें से तकरीबन आधे सिख थे। ये सिख अधिकांशतः यू. पी. के रहने वाले थे।

14 अक्तूबर 1825 में गारनेडीअर कम्पनी, जिसने आसाम जा कर आसामी भाइयों की आज़ादी खत्म करने से इन्कार कर दिया और अंग्रेज़ों की नीयत बदलती देख

कर विद्रोह खड़ा कर दिया था और कम्पनी के सारे अंग्रेज़ और गोरे अफसर सदा की नींद सुला दिये, को गोरा फ़ौजों की मदद से घेर कर बहुतों को तो गोलियों से उड़ा दिया गया। कम्पनी को तोड़ दिया गया। जो जवान बच गए, उनके कोर्ट मार्शल करके अलग-अलग सख्त दण्ड दिए गए। इस बगावत का दोष करतार सिंघ और हरि सिंघ नामक फौजीयों सिर मढ़ दिया गया। इस कम्पनी में बिहारी सिखों की गिनती ज्यादा की। कुछ आसामी सिख भी थे। इस विद्रोह में कोई 400 के करीब सिख शहीद हुए थे।

अंग्रेज नए-नए हथियाए पंजाब में अपने पाँस अभी तक पूरी तरह जमा भी नहीं सके थे कि जब औरंगाबाद के महाराज सिंघ ने 1847 में विद्रोह का झंडा बुलन्द कर दिया परन्तु आँखों की रोशनी चली जाने के कारण उसके साथ एक हिन्दू व्यक्ति ने गद्दारी की और हुकूमत के पास उसकी मुखबरी करके उसे पकड़ा दिया। हुकूमत ने उस को कारावास देकर सिंगापुर भेज दिया जहाँ जेल में ही उस की मौत हो गयी। फिर जल्दी ही सरदार अंतर सिंघ अटारी वाले ने आज़ादी का बिगुल बजाया परन्तु एक शक्तिशाली समराज के विरुद्ध उस अकेले की कया दाल गलती ?

1849 में सिघों ने अंग्रेज़ों के साथ भारत स्वतन्त्रता की आखरी जंग लड़ी। इस जंग में एक ओर केवल सिख रैजीमैंटे थीं और दूसरे ओर अंग्रेज़ों के साथ सारे भारत की रैजीमैन्टो, गोरखों और गढ़वालियों की फौजें थीं। नतीजे पर सिखों की हार हुई और सम्पूर्ण भारत अंग्रेज़ी राज में मिला दिया गया।

इसी साल के अन्त में सर चार्ल्स कैपीयर ने ऐसे आँकड़े एकत्रित कर लिये थे जिनसे यह स्पष्ट होता था कि पंजाब में 50 से ज्यादा रैजीमैन्टस अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए अवसर की ताड़ में तैयार बैठी थीं। 1850 में यह बगावत फूट पड़ी, पर चार्ल्स कैम्पियर की तत्परता के साथ यह असफल होकर रह गेंई। सिख रैजीमैंटल सैंटल, जहाँ से यह विद्रोह आरम्भ हुआ था, को बर्खास्त कर दिया गया और 95 सिख सैनिकों को अलग-अलग सजाएँ हुई।

अंग्रेज़ों के विरुद्ध शान्तमयी आन्दोलन सबसे पहले 1868 में, अभी जब कांग्रेस बनी भी नहीं थी, एक सिख महापुरुष बाबा राम सिंघ जी ने आरम्भ किया था। आप ने अंग्रेज़ी ज़ुबान, अंग्रेज़ी लिबास, अंग्रेज़ी सरकार की नौकरियों, सरकारी अदालतों, डाकखानों, रेल गाड़ियों आदि का बाईकाट करने का प्रोगराम देश को दिया और देश भर में मुकाबले की सरकार संगठित करने का प्रोग्राम बनाया। पंजाब में तो जगह-जगह उन्होंने अपने सूबे भी स्थापित कर दिये थे। नेपाल नरेश और रुस सरकार की सहायता का विश्वास भी प्राप्त कर लिया था, परन्तु भारत में जातिवाद

और जयचन्दी जहनीयत ने पंजाब से बाहर के किसी भारतीय का सहयोग बाबा जी को न मिलने दिया।

1871 में गौ हत्या आन्दोलन भी नामधारी महापुरुष ने चलाया। जगह-जगह कसाईयों का वध कर दिया गया। श्री दरबार साहिब श्री अमृतसर के प्रवेश द्वारा के साथ ही एक बुच्चड़खाना खोला गया था, जिस के साथ श्री दरबार साहिब और अमृत सरोवर की पवित्रता भंग होती थी। इस को कलगीधर (गुरु गोबिन्द सिंघ) जी के ये नामधारी सूरबीर भला कैसे बर्दाश्त कर सकते थे। रातों रात कसाइयों का वध कर के फैंक दिया और बुच्चड़ खाना गिरा कर जगह एक सी कर दी गई।

सिख शूरवीरों ने मिल्ट्री में भी साम्राजीयों के विरुद्ध बगावत फैलाने का यतन किया। जगह-जगह शूरवीर सूरमें इस मकसद के लिए तैनात किए गए। काबुल में भाई बिशन सिंघ, ग्वालियर में भाई नरायण सिंघ, काशी में भाई काहन सिंघ आदि को इस मकसद के लिए नियुक्त किया गया।

1872 में सिघों ने असलाखाने पर कब्ज़ा करने का फैसला किया। इस यतन में कोतवाल और 7 फौजी मारे गए। लुधियाना के डी. सी. ने फौजी सहायता माँगी और साथ लगती रियासतों को भी मदद करने के लिए कहा और इस तरह एक बड़ी फौज के साथ नामधारियों के इस दल को गिरफ्तार कर लिया गया। (सरदार अजायब सिंघ बी. ए , एल. एल. बी.)

अगर बाकी के भारत ने बाबा जी को उस वक्त सहयोग दिया होता और बाबा जी के प्रोग्राम को अपनाया होता तो नि:सन्देह देश के स्वतन्त्रता के लिए और पौनी सदी तक रास्ता न देखना पड़ता (1947 तक)। भारत में हिन्दू फिरकाप्रस्ती और जयचन्दी जहनीयत के कारण बाबा जी का आन्दोलन सफल न हो सका। नतीजे के तौर पर बाबा जी और उनके 12 साथियों को नज़रबन्द करके बर्मा में देश बदर कर दिया गया। जनवरी 1872 में 64 नामधारी शूरवीरों को तोपों से उड़ा दिया गया। बहुतों को उमर कैद की सजाएँ की गईं। जायदाद की ज़ब्ती और काले पानी की सजाएँ की गई। नामधारीयों के केन्द्र भैणी साहिब में ताज़ीरी पुलिस चौंकीयाँ बैठायी गयी और भैणी साहिब की यात्रा करने के लिए आने वाले श्रद्धालुओं को गलत यानी शक की निगाहों से देखा जाने लगा। कई लोगों को परेशान भी किया जाने लगा।

1869 में नामधारियों ने खालसा राज की स्थापना का ऐलान किया पर विधाता को कुछ और ही मनज़ूर था। अंग्रेज़ों का सितारा अभी चमकना था।

इस बात में रत्ता भर भी अति कथनी और मुबालगाआ मेज़ी नहीं है कि यदि 1849 में सारा देश इकट्ठा होकर सिखों के विरुद्ध न लड़ता या 1869-70 में बाबा

राम सिंघ जी को प्रश्न सहयोग देता तो देश की आज़ादी कबकी देश के शूरवीरों के पैर चूमती नज़र आती।

इस हकीकत से पर्दा उठाने में हमें कुछ भी हिचकिचाहट नहीं है कि अगर भारत में आज हिन्दू फिरका प्रस्ती और सिख विरोधी भावना की ज़हरीली ज़हनीयत न होती तो बाबा राम सिंघ जी गुरू कलगीधर के सिख न हो कर किसी और धर्म से सम्बन्धित होते तो आज के देश में "राष्ट्र पिता" के सम्मान से सम्मानित किए जा रहे होते। गाँधी जी ने देश को कोई नया प्रोग्राम नहीं दिया था, उन्होंने तो सारा का सारा बाबा जी का प्रोग्राम ही देश को दिया था।

सरदार दयाल सिंघ जी को 'दयाल सिंघ कॉलेज" या दैनिक ट्रिब्यून से कई लोग जानते होंगे। पर एक महान देशभक्त और पहले आन्दोलन के महान नैशनल लीडर के तौर पर कोई नहीं जानता होगा। आप जी का दादा भाई नारो जी के ऊँचे नैशनल लीडर थे और 1893 में ऑल इण्डिया नैशनल कांग्रेस के लाहौर सैसन के प्रधान चुने गए थे।

1907 में सरदार अजीत सिंघ (शहीद भगत सिंघ के चाचा जी) ने "पगड़ी सम्भाल जट्टा" की चेतावनी देकर देश के स्वतन्त्रता सैनानियों को हलूणों और अंग्रेज़ सरकार को एक खुला चैलेंज दिया। पर हालात साजगार न होने पर अपने दूसरे साथियों लाला हरिदयाल और राम बिहारी बोस के साथ देश से बाहर निकल गए और कैलेफोरनियाँ में हैड क्वाटर रख कर भारत स्वाधीनता की लहर को चलाने लगे। अमेरिका और कनेडा के सिखों ने "गदर पत्रिका" नामक अखबर शुरू किया और विदेशों में रहते सिखों को देश की स्वतन्त्रता के लिए प्रेरित करने का काम आरम्भ किया।

इसी साल कैनेडा में "बब्बर अकाली लहर" और कैलेफोरनिया में "गदर पार्टी" संगठन किए गए।

1913 में बाबा सोहन सिंघ जी भकना ने भारत में गदर पार्टी की नींव रखी। इस पार्टी के जाँबाज़ वर्करों ने देश में जगह-जगह अंग्रेज़ों और उनके पिठ्ठुओं और देश द्रोहियों चुन-चुन कर किनारे लगाया।

1914 में बाबा गुरदित्त सिंघ जी ने कामागाटा मारू जहाज़ में विदेशों में बसते सिर कुर्बान होने वाले देश भक्त भारतीयों को, जब कनेडा सरकार ने वैन्कूवर बन्दरगाह पर उतरने नहीं दिया, तो उन्हें भारत मे लाया गया। इन पौने चार सौ वीर देश भक्तों का देश की स्वतन्त्रता के लिए कोई अपना ही प्रोग्राम था, पर जहाज़ के बज-बज घाट पर लगने से पहले ही सत्ता को इस की भनक पड़ गयी और उनको

बज-बज घाट कर लगते हैं गोलियों से भून दिया गया। बाबा जी लापता हो गए, पचास सिख शूरबीर बन्दरगाह पर ही शहीदी जाम पी गए। बाकियों को बन्दी बना लिया गया।

कामागाटा मारू के कुल 376 यात्रियों में से 355 सिख थे। और शहीद होने वाले पचास के पचास ही सिख थे। ये घटना 21 सितम्बर 1914 की है।

उपरोक्त घटना की खबर जब विदेशों में पहुँची तो हर जगह अंग्रेज़ों के विरुद्ध गुस्सा एक दम भड़क गया और मनीला, सिंघाई, जापान, अमरीका आदि में बसे हुए 170 सिखों का एक जत्था 24 अक्तूबर 1914 को भारत पहुँचा, पर सब ही गिरफ्तार करके भारत में सब से अधिक तकलीफें दे कर और दु:खदायी जेलों मिन्टगुमरी और मुल्तान में ठूस दिया गया।

मार्च 1915 तक 3125 सिंघ दुनियाँ भर से अलग-अलग देशों से पंजाब आ पहुँचे और इसने स्वतन्त्रता लहर को काफी तेज़ कर दिया था।

(सरदार अजायब सिंघ बी. ए, एल-/ एल. बी)

1915-16 मे स: करतार सिंघ सराभा ने देश स्वाधीनता का जज़्बा भारतीय फौजीयों के दिलों में लायने का प्रोग्राम बनाया, पर वह सफल न हो सका और 14 नवम्बर 1917 को अपने 12 सिख साथियों समेत फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया। उस के 15 अन्य साथियों को सिविल और मिल्टरी अदालतों ने मौत की सजाएँ दी गईं।

इस समय में बाबा लोगों ने अपनी जायदाद और ज़मीन बेच कर अमरीका और कनेड़ा पहुँच कर वहाँ बसते भारतीयों को देश स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपना हिस्सा डालने की भरपूर प्रेरणा देने में सम्मान जनक काम किया।

अप्रैल 1919 को वैसाखी वाले दिन, अमृतसर में जलियाँ वाले बाग का ख़ूनी काण्ड हुआ, जिस में शहीद होने वाले 1300 देश भक्तों में 769 केवल सिख शूरवीर ही थे। (स: खुशवन्त सिंघ)

जलियाँ वाले बाग में जनरल डायर की गोलियों का शिकार हुए, उन हज़ारों निहत्थे और मासूम लोगों का बदला भी एक सिख उदम सिंघ सुनाम वाले ने ही लिया था जो पूरे इक्कसी सालों बाद की उन मासूमों की सिसकीयों की याद को भुला न सका और अन्त में उनके कातिल के घर इंग्लैंड में जा कर मारा और इस तरह एक पुराना बदला जा चुकाया।

देश स्वतन्त्रता के लिए गाँधी जी ने देश को शान्तिमय आन्दोलन चलाने का प्रोग्राम दिया। यह बात 1918 की हैं, पर इस प्रोग्राम को प्रारम्भ कौन करे ? अन्तत:

पहले 1919 की वैसाखी और जलियाँ वाला बाग में और फिर 9 अगस्त 1921 वाले दिन निरोल अकाली झण्डे के नीचे 'गुरु का बाग' का मोर्चा प्रारम्भ करके दशमेश पिता के शूरवीरों ने इस प्रोग्राम को आरम्भ किया।

1922 में बब्बर अकाली लहर का गठन कर के बब्बरों ने अपनी सरगर्मियों से साम्यराज की पकड़ को काफी नुक्सान पहुँचाया।

गुरुद्वारा लहर (1921-1928) वास्तव में देश स्वतन्त्रता आन्दोलन का ही आरम्भ था। इस बात को देश के चोटी के लीडरों ने स्वीकार किया है :—

नीचे हम देश के उच्च पद्दर के नैशनल लीडरों के विचार जो उन्होंने इस आन्दोलन के सम्बन्ध में उस वक्त किये दे रहे हैं :—

"मैं प्रणाम करता हूँ अकालियों को, जिन्होंने देश की आज़ादी के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया है और आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं।"

(पंडित मोती लाल नेहरु)

"गुरु के बाग में से ही देश स्वतन्त्रता की लहर उठी है और अब इसी ने ही देश को स्वतन्त्र कराना है।" (पंडित मदन मोहन मालवीय)

"सिख कौम का जन्म देश की स्वतन्त्रता के लिए हुआ है और इन भाईयों के होते देश अब ज्यादा देर गुलाम नहीं रह सकता यह मेरा पक्का विश्वास बन गया है।" (दादा भाई नारो जी)

"सिख भाईयों ने हमें देश-स्वतन्त्रता की प्राप्ति का नुस्खा सिखा दिया है। अब दुनियाँ की कोई भी ताकत हमें ज्यादा देर गुलाम नहीं रख सकती।"

(डाक्टर सैफूदीन किचलू)

"जिस देश के पास सिखों जैसी शहीदों की कौम मौजूद हो, वह देश ज्यादा देर गुलाम नहीं रह सकता।" (पट्टा भाई सीता रामईया)

"आज़ादी हर एक का हक है, हम कुपुत्र हैं, पर अकाली सपुत्र है जो कि अपने इस हक के लिए लड़ रहे हैं।" (लाला लाजपत राय)

लायल गजट में लाला लाजपत राय ने लिखा है :—

"जहाँ तक अहिंसा और उसके साथ सबन्धित आत्म बलिदान की भावना का सम्बन्ध है, सिखों ने ननकाणा साहिब में और पीछे अजनाला और अमृतसर में उस का आश्चर्यजनक सबूत दिया है। उन्होंने अपने आप को श्री गुरु गोबिन्द सिंघ के सच्चे सिख साबित कर दिया है और बलिदान तथा वीरता के जिस में कुभाव का कोई अंश नहीं, के जो उदाहरण स्थापित किए हैं, उनका संसार के इतिहास में कोई जवाब नहीं है।"

गुरु के बाग के मोर्चे के बाद सी. एफ. इन्ड्रयूज़ लिखता है —

"इस धरती पर नई वीरता, जिसका जन्म ही कष्ट भोगने की शक्ति से हुआ है, उदय हुई है। गुरु नानक के सिखों ने दुनियाँ को अहिंसक लड़ाई का एक नया सबक सिखाया है।"

"ये अकाली खाली ख़ून हड्डीयों के बने हुए नहीं, इन की शारीरक और रुहानी शक्ति अन्दाज़े से बाहर हैं।" (डा. खान चन्द देव)

"सिख भारत की सभी कौमों से सख्त जान हैं। मैंने किसी भी सिख को मार पड़ते हुए हाय-हाय करते हुए नहीं देखा और न सुना। मुझे तो ऐसे लगता है कि पुलिस मैं शैतान और अकालियों में ईश्वर खुद प्रत्यक्ष बसता है।"

पंडित मदन मोहन मालवीय तो सिंघों की कथनी और करनी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने हिन्दूओं को इस बात के लिए प्रेरित किया कि अगर वह विदेशी हुकूमत की गुलामी से मुक्त होना चाहते हैं तो फिर हर हिन्दू घर में कम-से-कम अपना एक पुत्र सिख बनाना चाहिए।

गुरु के बाग में पुलिस कप्तान बी. टी. खुद मार-पीट की सरप्रस्ती तथा अगवाई करता था। उस के जुल्म देख कर कमिश्नर लाहौर, जोकि भले खुद अंग्रेज़ था, हैरान हो गया तथा अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने शिमले से गवर्नर पंजाब को बुलाया, जिसने पुलिस के हाथों से किये जा रहे इन्सानियत सोज़ ज़ुल्म आँखों से देखे और देख कर सहन न कर सका। उस दिन मार-पिटाई बन्द कर देने के सख्त आर्डर दे दिये और उसके बाद केवल गिरफ्तारियाँ ही होती रही।

गुरुद्वारा श्री तरन तारन साहिब के पहले शहीद सरदार हज़ारा सिंघ की ीर-गाथा सुन कर गांधी जी ने गुरुद्वारा आज़ाद हो जाने पर अकाली दल को तार जी कि :—

"मुझे देश आज़ाद करवाने का नुस्खा मिल गया है, गुरुद्वारा आज़ाद हो गया, मुबारक हो, अब देश भी आपने ही आज़ाद करवाना है।" (एम. के. गांधी)

चाबियों के मोर्चे की सफलता पर गांधी जी ने जो तार शिरोमणी अकाली दल को जनवरी 1922 में दी थी :—

"देश स्वतन्त्रता की पहली लड़ाई जीत ली गई है। मैं सिख कौम को बधाई देता हूँ। (एम. के. गाँधी)

(अकाली आन्दोलन के गुप्त पत्र)

गाँधी जी की यह दोनों ही तारें काँग्रेस और अकाली दल के रिकार्ड में मौज़ूद हैं।

गुरुद्वारा मुवमैंट में पाँच सौ सिख शहीद हुए, 30 हज़ार सिख जेलों में गए और 10 लाख रुपए सिखों ने जुर्माना भरा।

(प्रोफैसर. गन्डा सिंघ पी. एच. डी.)

कॉलोनी एक्ट के विरुद्ध शहीद होने वाले, उमर कैद की सज़ाए भोगने वाले तथा अंग्रेज़ सरकार की जेलों के कष्ट भोगने वाले सारे ही सिख थे।

नाभा नरेश महाराजा रिपुदमन सिंघ सारे भारत में अकेला शेर दिल महाराजा था, जिसने देश स्वतन्त्रता सरगर्मियों पर पाबन्दियाँ लगाने और देश भगतों पर कड़ी निगाह रखने सम्बन्धी अंग्रेज़ सरकार के किसी भी हुक्म की ज़रा भी प्रवाह नहीं की, बल्कि वह देश स्वतन्त्रता सैनानियों की हर योग सहायता भी करता रहा, जिसके फलस्वरूप उस को गद्दी से उतार कर उसके पुत्र को गद्दी नशीन कर दिया गया, पर यह अपने पिता से भी अधिक देश भक्त साबित हुआ जिसके फलस्वरूप इसको भी गद्दी से उतार दिया गया और कोड़ा कनाल (मद्रास) में नज़रबन्द कर दिया गया। इस को गद्दी से बेदखल करने के विरुद्ध सिखों की ओर से चलाए गए आन्दोलन में पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा-डॉ. सैफूद्दीन किचलू भी गिरफ्तारी देने के लिए आए थे और गिरफ़तार हो गए।

पंजाब के दुआबे के इलाके में चली बब्बर अकाली लहर ने उत्तर-पश्चिमी भारत में खलबली मचा दी। इस निरोल सिख संस्था के डर के कारण कोई भी खुफिया स्वतन्त्रता संग्रामियों के मुकद्दमों में उनके विरुद्ध गवाही देने तक का हौंसला नहीं करता था।

लाहौर सैन्ट्रल जेल में 1914-15 के गदरी बाबा लोगों और बब्बरों में से 7 देश भक्तों को फाँसी दे दी और 17 को मौत की सजाएँ दी गई, जिनमें 7 में से 6 17 में से 14 सिख थे। परन्तु 27 प्रवाने, जिनको उमर कैद की सज़ा हुई, वह सारे के सारे ही गुरू कलगीधर जी के लाड़ले सिख थे।

इसी कड़ी के एक और केस में फैसले के अनुसार सात भाइयों को उमर कैद हुई, जिनमें से 4 सिख ही थे। लाहौर सप्लीमैंट्री साज़िश केश नम्बर एक में 5 भाईयों को फाँसी हुई। ये पाँचों ही सिख थे और 91 की उमर कैद हुई, जिनमें से 90 सिख थे। इसके बाद पाँच और लाहौर सपीलीमैन्ट्री साज़िश केस के फैसलों में 50 बहादुरों को अलग-अलग सज़ाएँ हुईं, जिनमें से 49 सिंख थे।

लाहौर जेल में एक समय 7-7 फांसी के रस्सों पर सात-सात अकाली शूरवीरों ने झूल कर जो अजीब शहीदी नज़ारे पेश किए, संसार के इतिहास में ऐसी और कोई मिसाल नहीं मिलती।

4 मार्च 1930 को अढ़ाई हज़ार कॉंग्रेसी वालिन्टयरों ने आज़ाद मैदान बम्बई में पंडित मोती लाल नेहरू का स्वागत करना था। अंग्रेज़ों ने इस जलसे पर पाबन्दी लगा रखी थी। इन अढ़ाई हज़ार वालिन्टयरों के साथ स: प्रताप सिंघ की जत्थेदारी में 23 अकाली सिंघ और 6 औरतें अकाली झण्डे के नीचे शामिल थे। पुलिस ने सभ को तितर-बितर होने का नोटिस दिया, पर जलसे में और जोश बड़ गया। पुलिस ने लाठी चार्ज किया। पहले दौर में ही अढ़ाई-हज़ार के अढ़ाई हज़ार वालिन्टयरों नौ दो ग्यारह हो गए। केवल 29 प्राणी नीली वस्तारों और दुपट्टों वाले बाकी बचे। पुलिस ने पुरे ज़ोर अपनी सम्म वाली लाठीयों का जाला साफ किया, पर 'वाहेगुरु, वाहेगुरु' का जाप करते हुए शूरवीरों का यह जत्था तब तक पुलिस की मार खाता रहा, जब तक कि पुलिस खुद ही मार-मार के थक नहीं गई।

(ईवनिंग टाईमज़) 'Evening Times' न्यूयार्क के प्रतिनिधि ने यह सब कुछ अपनी आँखों से देखा गया 23.3.1930 के पर्चे में लिखता है :—

"भारत में एक कौम ऐसी भी है, जिनके सिरों पर औरतों की तरह बाल हैं और मुँह पर पादरियों की तरह दाड़ी। इनके गलों में तीन-तीन फुट लम्बी तलवारें होती है। बम्बई में पुलिस की लाठीयों के प्रहार के समय यह शान्तिपूर्वक मार खाते, गिरते, फिर उठ कर लाठीयाँ खाने के लिए तैयार-बर-तैयार हो जाते। हैरानी इस बात की है कि सब के पास तीन-तीन फुटी तलवारें होने पर भी किसी का हाथ अपनी तलवारों पर नहीं गया।"

1930 के गाँधी जी के असहयोग में भी बलिदान देने में सिख कौम किसी कौम से पीछे नहीं रही।

सन् 1931 में जब कुछ स्वतन्त्रता संग्रामियों को अण्डमान में लैजाया जा रहा था तो सरदार रतन सिंघ और उसके कुछ और सिख साथियों ने बहुत सारे अंग्रेज़ अफसरों को मार कर देश की आज़ादी के प्रति अपनी तीव्र भावनाओं का प्रकट किया। भले बाद में इन सिंघों को इस की भारी कीमत अपनी जानें देकर चुकानी पड़ी।

1934 का सर्व हिन्द कांग्रेस सैशन बम्बई में होना था, पर अंग्रेज़ सरकार के सीधी तरह तो इस पर रोक लगाई नहीं, पर कुछ भाड़े के गुण्डों के साथ साँठ गाँठ कर ली कि वे आज़ाद मैदान में, जहाँ प्रोग्राम होना था, तम्बू न लगने दें। कितने दिन झगड़ा पड़ा रहा। ये पंडाल बनाएं और वह उखेड़ दें। अन्त पंजाब से मास्टर तारा सिंह जी की जत्थेदारी में एक सौ सिर कटने से न डरने वाले अकाली शूरवीरों का जत्था यहाँ पहुँचा और उन्होंने गुण्डों को ललकारा। दशमेश पिता जी के शूरवीरों की तलवारों के पहरे में तम्बू (पंडाल) बना और इन शूरवीरों की तलवारों (श्री साहिबों) की छाया में ही उस वक्त यहां कांग्रेस का सैशन हो सका, नहीं तो साम्राज्य सरकार ने उस वक्त सैशन को फेल करने के मनसूबे बना रखे थे।

देश स्वाधीनता के लिए स. किशन सिंघ गड्गज, भाई ईश्वर सिंघ मरहाणा, मास्टर मोता सिंघ, सः खड़क सिंह, मास्टर महताब सिंघ, सः तेजा सिंघ समुन्द्री, सः तेजा सिंघ अकरपुरी, सः सरदूल सिंघ कविशर, सः उदम सिंह नागोके, सः सोहन सिंघ जोश, सः तेजा सिंघ स्वतन्त्र, सः सेवा सिंघ ठीकरीवाला, भाई रणधीर सिंघ, भाई विधान सिंघ चुघ, मास्टर तारा सिंघ, झबालिए भराई, आदि सैंकड़े अकाली सिंघों की सरगर्मियाँ उल्लेखनीय है।

सरदार दर्शन सिंघ फेरुमान का नाम देश स्वाधीनता के इतिहास में अमर शहीदी की सूची में लिखा जायेगा।

सरदार भगत सिंघ भी एक सिंघ ही था जो कि हिन्दुस्तान की आज़ादी के खातिर हँसते हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ गया भले गाँधी ईर्विन पैक्ट के समय उस महान देश भक्त के हितों के साथ पूरी तरह विद्रोह कमाया था। आज उसके पत्थर की मूर्तियाँ इस विद्रोह की कदाचित तलफी नहीं कर सकती भले सौ हो या हज़ार। ऐसे शूरवीर की कुर्बानी का वर्णन करने से बिना भारत का स्वतन्त्रता का इतिहास लिखा ही नहीं जा सकता।

'पट्टाभाई सीता रामईया' की हिस्टरी आफ इन्डीयन नैशनल काँग्रेस की लिखित अनुसार देश स्वतन्त्रता के आन्दोलन में पूरे यौवन पर 929 देश भक्तों को फाँसी दी गई, जिनमें से 94 सिख थे। 2664 को जलावतन कीया गया, जिनमें से 2147 सिख थे और जेल जाने वालों में 40 प्रतिशत सिख थे। इन आँकड़ों में बाबा राम सिंघ जी की नामधारी तहरीक, कामागाटा मारू जहाज़ के शहीद, बब्बर अकाली लहर, गुरुद्वारा मूवमैंट, कालोनी एक्ट के विरुद्ध की तहरीक और शायद सरदार भगत सिंघ गरूप के शहीदों के आँकड़े शामिल नहीं हैं।

भारत को दूसरे लोगों की सहायता से बकायदा जंग लड़ के आज़ाद कराने का प्लान भी एक सिंख जरनैल जनरल मोहन सिंह ने ही बनाया था। संसार भर में दूसरे विश्व युद्ध के भारतीय जंगी कैदी, जहाँ-जहाँ भी आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, जर्मनी, सिंघा पुर, जापान आदि में कैद थे, सभी को जगह-जगह संगठित करने वाले भी सिख फौजी भाई थे जिनमें से करनल गुरुबक्शे सिंघ, मेजर सन्त सिंघ, डाक्टर गुरुबख्श सिंघ, मेजर जगजीत सिंघ आदि के नाम विशेष तौर पर लिखने योग हैं। जनरल मोहन सिंघ ने जापान में आज़ाद हिन्द फौज को संगठित किया, पर किसी कारण वंश जब जरनल को जापानियों ने गिरफ्तार कर लिया तो मास्टर तारा सिंघ को मिले उनके पत्र ने, मास्टर जी को श्री सुभाष चन्द्र बोस को यहाँ से निकल जाने और जनरल के पास पहुँचने की साजिश बनायी। सुभाष जी को कलकत्ता से रावलपिण्डी, रावलपिण्डी से कुहाट और कुहाट से पेशावर पहुँचाने वाले भी सौभाग्य वंश सारे सिख ही थे।

आज़ाद हिन्द फौज की कुल नफ़री (संख्या) 42,000 बतायी जाती है, जिनमें से 28,000 केवल सिख सैनिक थे ।

1945 में 'क्विट इण्डिया' लहर के दौरान कांग्रेस की ओर से दिये आदेशों की पूर्ति के लिए तोड़ फोड़ की कारवाईयों में सिखों ने सब से बड़-चढ़ के हिस्सा डाला भले बाद में उन्हीं काँग्रेसी लीडरों ने इस की जिम्मेवारी को स्वीकार करने से साफ इन्कार कर दिया था ।

1946 में बम्बई में नेवी के जवानों के विद्रोह में भी सिख सैनिक किसी और से कम नहीं थे ।

यह कलगीधर के दूल्हें शेर मास्टर तारा सिंघ और सिखों के ही साहस का परिणाम था, जिस ने लाहौर असैबली से मुस्लिम लीग का झण्डा फाड़ कर भारत को आधा पंजाब बचा कर दिया, नहीं तो पाकिस्तान की सीमा जमना ही बननी थी ।

भारत की रियासतों की ताकत भारत से कहीं अधिक थी । देश की अखण्डता के लिए जब रियासतें ज़ज़ब (Emerge) करने का समय आया तो यह एक सिख महाराजे, महाराजा पटियाला की तजवीज़ ही थी कि इतनी बड़ी ताकत को एक ही रुलिंग के साथ चैम्बर ऑफ प्रिन्सेज़ को तोड़कर भारत की शक्ति को इकट्ठा करने में देश की महान सेवा की ।

पर बड़े दुःख के साथ हम देखते हैं कि देश स्वतन्त्रता के लिए इतनी भारी कुर्बानियाँ करने वाली कौम के साथ पक्षपात किया जा रहा है । देश में से मार्शल और नॉन मार्शल का भिन्न भेद मिटाने की पॉलिसी के पीछे सिख ईर्खा का जज़्बा स्पष्ट होता है । यह बात किसी से छुपी हुई नहीं कि जिन नॉन मार्शल (Non-Marshal) जातियों को सिखों की बराबरी की गई हैं, उनको काश्मीर तथा हैदराबाद में विशेष तौर पर "बोले सो निहाल सति श्री अकाल" के नारों की ट्रेनिंग दी गयी थी ताँकि जो दुश्मन को धोखा दिया जा सके ।

1962 का चीन युद्ध, 1965 और 1971 में पाकिस्तान के साथ हुए युद्धों का इतिहास हैदराबाद तथा गोवा के पुलिस एक्शनों की तारीख पड़ के देख लो, हर जगह नायक सिख सैनिक ही नज़र आयेंगे ।

बंगला देश की स्वतन्त्रता के समें ढाका में 'न्यू यार्क टाईमज़ के प्रतिनिधि ने कहा था :—

"खालसा ही एक ऐसा बहादुर योद्धा है, जो मज़लूमों की रक्षा कर सकता है और जालिमों को मार सकता है ।"

इतिहास इस बात का गवाह है कि लाला लाजपत राय को पुलिस की एक

लाठी पड़ी थी और वह पंजाब का शेर बन गया। पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त को अंग्रेज़ों की पुलिस द्वारा लगी एक ही लाठी की चोट से आयु-पर्यन्त उस का सिर तथा शरीर काँपता रहा, पर भारत स्वतन्त्रता के गुरु का बाग मोर्चे के पहले शहीद भाई श्याम सिंघ को बी. टी. की 97 लाठियाँ भी शहीद नहीं कर सकी। वह 98 लाठियों की चोट सहन के शहीद हुआ था।

गांधी जी के चलाये नमक सत्याग्रह में अंग्रेज़ी पुलिस ने दशमेश जी के इले शेर जमियत सिंघ को पूरे सोहला बार अपनी दुष्टता का शिकार बनाया और दिल खोलकर के अपनी लाठीयों का नशा उतारा पर साम्राज्वादियों की लाठीयों को ही हार माननी पड़ी, और गुरु का सिख मार खाने के लिए अभी भी तत्पर था।

12 साल के बच्चे अवतार सिंघ को जब ननकाना साहिब जाने वाले जत्थे में उमर छोटी होने पर शामिल न किया गया तो उसने अकाल तख्त के सामने भूख हड़ताल करके मरजाने का फ़ैसला किया और कहा कि अगर तथा नौ साल के बाबा फतेह सिंघ और बाबा जोरावर सिंघ जी शहीदी के लिए छोटे नहीं थे तो मुझे क्यों इस आगामी शहीदी के बाटे से अलग रखा जा रहा है।

20 साल की बीबी प्रसिन्नी कौर गुरु के बाग में अपने दो साल के इकलौते बच्चे को अपने हाथों से पुलिस की लाठियों के आगे कर के अपनी आँखों के सामने शहीद करावा कर खुद भी बी. टी. की लाठीयों से शहीद हुई। भाव यह कि यह शक्ति, यह जुरअत, यह बलिदान भावना के साथ मार खा सकने की सुरमयी ताकत दशमेश जी के अंम्रित से ही प्राप्त होती है, जिनके सामने अंग्रेज़ों की लाठीयाँ भी शरमा गई थीं।

भाव यह कि सिख भले देश की समूची आबादी का 2 प्रतिशत भी नहीं, पर देश स्वतन्त्रता आन्दोलनों में पुलिस की लाठीयाँ खाने वालों, पुलिस कायरों से शहीद होने वालों, फाँसियों पर चढ़ जाने वालों, जलावतन कीये जाने वालों, उमर कैद तथा काले पानी की सज़ा माँगने वालों, आज़ादी के मूल्य में अपना घर घाट तथा ज़मीन, जयदाद, अपनी पवित्र जन्म धरती, पावन धर्म स्थान तथा कई अज़ीज रिश्तेदारों की जानों की कुर्बानी दे देने वालों, आज़ादी के पश्चात् देश स्वतन्त्रता की रक्षा में काश्मीर युद्ध में, 1962-65 तथा 1971 की लड़ाईयों में, हैदराबाद तथा गोआ के पुलिस एक्शनों में सब से अधिक शहीद होने वालों और अचम्भित कर देने वाली वीर गाथाओं को जन्म देने वालों की अगर निर्पक्षता तथा ईमानदारी से खोज करवाई जाए तो इस में दो प्रतिशत सिखों का हिस्सा 98 प्रतिशत से किसी तरह भी कम नहीं होगा।

इसलिए ज़ाहिर है कि देश की आज़ादी की लड़ाई का कोई भी फ्रंट ऐसा नहीं, जिस के हर मुहाज़ पर सिख कौम ने सब से बढ़-चढ़ कर हिस्सा न डाला हो। इस

की जानी और माली कुर्बानियाँ दूसरी कौमों के मुकाबले कहीं अधिक हैं। भले सिख कौम की गिनती उस समय देश की कुल आबादी का केवल 1.5 फीसदी ही थी तो भी आज़ादी के लिए की गई कुर्बानियों में इस का हिस्सा 90 फीसदी से भी ऊपर है। 1942-43 की क्विट इण्डिया लहर के सम्बन्ध में समय की हकूमत ने बड़ी मात्रा पर जो गिरफ्तारियाँ कीं उसकी पकड़-थकड़ में 3 चौथाई गिनती सिखों की थी, भले उसे समय पंजाब में इन की आबादी केवल तेरह फीसदी थी।

आज़ादी की लड़ाई में सिखों और गैर-सिखों की ओर से की गई कुर्बानियों की समूची तस्वीर को इस के असली रूप में पेश करने के लिए ज़रूरी समझा गया है कि इस के आँकड़े एक चार्ट की शक्ल में दिये जाए। नीचे दिया गया चार्ट स्वतन्त्रता संग्राम में सिख कौम की ओर से की गई महान् कुर्बानियों की मुँह बोलती तस्वीर है। समुच्वी आबादी का केवल 1.5 फीसदी भाग होने पर भी इस कौम की ओर से की गई इतनी महान कुर्बानियों को देख कर सिखों को ज़राईम पेशा करार देने वालों का सिर शर्म से झुक जाना चाहिए। यदि सच पूछो तो यह इल्ज़ाम तो उनके अपने फिरके पर फिट होता है जो कुल आबादी का 80 फीसदी से भी अधिक भाग होते हुए भी कुल कुर्बानियों में केवल दो फीसदी हिस्सा ही डाल सके। इन आँकड़ों की पुष्टि मौलाना आज़ाद ने की हुई हैं :—

क्रम नः	जो सजा मिली	सिख	गैर-सिख	जोड़
1.	फाँसी मिली	93	28	121
2.	उमर कैद	2147	499	2646
3.	जलियाँ वाले बाग में मरे	799	501	1300
4.	बज-बज घाट में मरे	67	47	113
5.	कूका लहर में मरे	91	–	91
6.	अकाली लहर में मरे	500	–	500
	कुल जोड़	3697	1074	4771

यह आँकड़े विशेष महत्त्वता के धारणी होने पर भी, सिख कौम की ओर से भारतीय आज़ादी के लिए की गई कुल कुर्बानियों का केवल एक भाग ही हैं, क्योंकि इनमें वे कुर्बानियाँ शामिल नहीं जो सिघों ने आज़ाद हिन्द फौज, इण्डियन नेवी के विद्रोह और 1946 में दिल्ली पुलिस की स्ट्राइक के समय की। आज़ाद हिन्द फौज में शामिल होने वाले 20,000 फौजियों में से सांठ फी सदी सिख थे और इस की बुनियाद रखने वाला भी एक सिख ही था।

इसलिए स्वतन्त्रता संग्राम का एक भी ऐसा पक्ष नहीं जिस में हर जगह सिख हमेशा पहली कतार में ना रहे हों और जिस में उन्होंने बाकी कौमों के मुकाबले सब से ज्यादा हिस्सा न डाला हो।

परन्तु उपरोक्त आँकड़े उस महान् गाथा का केवल एक भाग ही था, जो सिख कौम ने देश की आज़ादी के लिए अपने खून पसीने द्वारा लिखी। दूसरा भाग, जो उस पर ठोंसा गया और भी भाव पूरक और हृदय वेदक है। इस भाग में तकरीबन आधी से अधिक सिख कौम को अपने साक-सम्बन्धीयों, अपनी निजी जायदादों, घर घाट और अपने खून-पसीने के साथ बसाई हुई बाराओं का बलिदान देना पड़ा और इससे भी अधिक ननकाणा साहिब, पंजा साहिब और डेहरा साहिब समेत अपनी जिन्दजान से प्यारे 170 पवित्र गुरधामों से बिछुड़ना पड़ा। इस प्रसंग में प्रसिद्ध अखबार "स्टेटसमैन" का ऐडीटर अपने 3 जनवरी, 1948 के अंक में लिखता है :—

"स्वतन्त्रता संग्राम में इस महाद्वीप में सब से अधिक मुसीबतों का शिकार सिख कौम को होना पड़ा और इस की आर्थिकता और महान विरसे में उथल-पुथल आ गया। इस छोटी सी, मगर महान कौम का 40 फीसदी भाग किसे न किसे शक्ल में उजड़ गया। इस को अपनी लहलहराती और उपजाऊ बारों को छोड़ कर बंजर ज़मीन पर आना पड़ा। जो हरी भरी बारें सिख किसानों ने अपने लहू पसीने से बसायी थी। उनको छोड़ कर आना पड़ा। और इसी तरह दिहाती और शहरी इलाके में अपने कीमती सरमाए की आहूती देनी पड़ी। इस के इलावा कई धर्म पवित्र सिख गुरुद्वारे भी सीमा के उस पार रह गए।"

प्रसिद्ध उर्दू जरनलिस्ट नानक चंद नाज़ इसी प्रसंग में अपने दैनिक अख़बार 'प्रभात' के 11 अक्तूबर 1948 के पर्चे में लिखता है :—

"सच्चे देश भक्त होने के नाते हम सब को यह स्वीकार करना चाहिए कि देश के बँटवारे के समय हुए नुक्सान का बहुत बड़ा हिस्सा सिख कौम को ही बर्दाश्त करना पड़ा है।"

सोचने वाली बात है कि सिख कौम ने हज़ारों की गिनती में अपने लड़के लड़कियाँ और पिता पुरखी ज़मीनों जायदादों की कुर्बानी और इसके इलावा अपनी ज़िन्दगी और जान से भी अधिक प्यारे ननकाना साहिब समेत कई परम पवित्र गुरधामों से विछोड़ा इसलिए तो नहीं सहा था कि एक की गुलामी से निकल कर दूसरे की गुलामी में फंस जाएँ या अपनी गर्दन किसी और शिकंजे में फंसा लें। यह महान् कुर्बानियाँ उस ने इस विश्वास पर ही की थीं। उस को आज़ाद हिन्दुस्तान में समानता और स्वै-सतिकार पर आधारित एक गौरव मई स्थान प्राप्त हो सकेगा।

सिख कौम की ऐसी आशाओं का आधार वे पक्के वादे और कसमें थीं। जो इनके साथ श्री गांधी और नेहरू जैसे हिन्दू लीडर समय-समय पर करते आये थी। ये भरोसे केवल जबानी ही नहीं थे, बल्कि लिखित रूप में भी कांग्रेस पार्टी के रैजुलेशनों की शक्ल में जगह-जगह लिखे गए थे। ऐसा एक स्टेटमैंट 1929 में कांग्रेस के लाहौर के समागम में भी पास किया गया है जो इस प्रकार है :—

"कॉंग्रेस की ओर से इस प्रकार के कत्तई और पक्के भरोसे सिख कौम को देश के बँटवारे और उस से भी थोड़ा-सा समय बाद तक समय-समय दिये जाते रहे हैं। इसी सम्बन्ध में पाठकों का ध्यान 1947 से पहले गुरुद्वारा सीस गंज दिल्ली में लगे एक दीवान की ओर दिलाया जाता है जिसमें श्री मोहन दास करम चन्द गाँधी भी मौजूद थे। उस समागम में एक सिंघ, सरदार मधु सूदन सिंघ ने कॉंग्रेस की ओर से सिख कौम को दिये जा रहे भरोसों के बारे में अपने सन्देहों को प्रकट करते हुए गाँधी जी को कहा था कि कॉंग्रेस राज सत्ता में आने के बाद अपने वचनों और वायदों से इन्कारी भी तो हो सकती है। उस समय गाँधी जी ने सिख कौम को ऐसे शकों को शान्त करने के लिए सिख संगतों को सम्बोधित करते हुए कहा था :—

"मैं बेनती करता हूँ कि आप मेरे वचनों और कॉंग्रेस की ओर से पास किये गए स्टेटमैंटों पर यकीन करो। तुम्हारी सारी कौम को धोखा देना तो एक तरफ रहा, हम किसी एक व्यक्ति के साथ भी ऐसा नहीं कर सकते, जब कभी कॉंग्रेस ने ऐसा करने की कोशिश की तो वह अपनी बर्बादी को अपने आप बुलावा देगी। मेरी तुम्हारे आगे नम्रता सहित बेनती है कि आप अपने हृदयों में से ऐसे तथ्य और शक बिल्कुल निकाल दो। मैं परमात्मा को हाज़िर नाज़िर जान कर कहता हूँ कि जो जो वादे मेरी ओर से और कांग्रेस की ओर से तुम्हारी कौम के साथ किए गए हैं उनको हम हर कीमत में निभाएंगे। मेरे विचार में कॉंग्रेस का अहिंसा विश्वास उस की ओर से दिए वचनों की सब से बड़ी और पक्की गारन्टी है। इस लिए हमारे सिख भाईयों को यह सोचना तक भी नहीं चाहिये कि उनके साथ कभी भी कोई धोखा या फरेब किया जा सकता है क्योंकि जब कभी भी कांग्रेस ने ऐसा करने की कोशिश की, वह अपनी और अपने देश की बर्बादी का कारण खुद बनेगी। इस के इलावा सिख एक बाहदुर कौम है और वह अपने हकों की रक्षा उन हथियारों से करना जातनी है, जो उसकी रहित मर्यादा का हिस्सा है।"

इसी ही प्रसंग में जुलाई 1946 में कलकत्ते में हो रही ऑल इण्डिया कॉंग्रेस कमेटी की मीटिंग के मौके पर एक प्रैस कॉनफ्रैन्स को सम्बोधन करते हुए पंडित नेहरू ने भी कहा था :—

"पंजाब की बहादुर सिख कौम विशेष महानता की धारणी है। मेरे विचार में

हमें किसी को भी इस सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि उत्तर पश्चिम भारत में एक ऐसा इलाका और इन्तजाम सिख कौम के लिए सुरक्षित रखा जाए जिसके द्वारा ये भी आज़ादी का आनन्द ले सकें।"

इसी सम्बन्ध में पाठकों का ध्यान काँग्रेस कमेटी के इस फ़ैसले की ओर दिलवाना भी उचित होगा। जो इसने अपनी 5 जनवरी 1947 की मीटिंग में पास किया था :—

"बर्तानकी काबीना की 16 मई 1946 की स्कीम और विशेष कर इसके जो अर्थ ब्रिटिश सरकार ने अपने 16 दिसम्बर, 1946 के ध्यान में निकाले हैं उनके द्वारा आसाम उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त और पंजाब की सिख कौम को जिन भी कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है, ऑल इण्डिया काँग्रेस कमेटी उनको अच्छी तरह जानती हुई, इस स्कीम का कदाचित समर्थन नहीं कर सकती, क्योंकि वह किसी भी फ़ैसले को ठोसने के विरुद्ध है पंजाब में सिख कौम के विशेषाधिकारों को तो कभी भी आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता।"

इन्हीं स्कीमों की पुष्टि करते हुए काँग्रेस वर्किंग कमेटी ने मार्च 1947 में एक और फैसला पास किया था, जिसमें संविधानिक असैंबली के उद्देश्यों का वर्णन करते हुए कहा—सिद्धान्त की विशेष तौर पर पुष्टि की गई कि कोई भी विधान कम गिनती वाली कौमों पर उनकी मर्ज़ी के खिलाफ ठोसा नहीं जाएगा।

इस सम्बन्ध में यहाँ पर ही यह बता देना उचित होगा कि भारत के संविधान में किसी भी सिख प्रतिनिधि ने आज तक इसलिए मानता नहीं दी क्योंकि इस को तैयार करते समय इस के निर्माताओं की ओर से सिख कौम के साथ किए गए वचनों और वादों को भूल कर सिख कौम के साथ पूरी हठ-धर्मी और लज्जा रहित तरीके के साथ धक्का किया। इसी कारण उस समय संविधानक असैम्बली के दो सिख मैम्बरों ने भारतीय संविधान केखरड़े पर अपने दस्तखत करने से साफ़ इन्कार कर दिया था।

सिख कौम के साथ की गई गद्दारी को समझने के लिए पाठकों का ध्यान उस फ़ैसले की ओर से दिलाया जाता है, जो जवाहर लाल नेहरु ने 9 दिसम्बर 1946 को संविधानिक असैम्बली के पहले इजलास में पेश किया था और जिस के द्वखारा यह असूल स्वीकार किया गया था कि :—

"कुछ विभागों को छोड़ कर देस के सारे प्रान्त अपने इलाके में मुकम्मल तौर पर खुदमुख्तार होंगे।"

यह पहला फ़ैसला था जो भारत के पहले प्रधान मन्त्री ने संविधान सभा की पहली मीटिंग में पेश किया था और जिस की प्रधानगी बाबू राजेन्द्र प्रसाद कर रहे

थे। यह फ़ैसला विशेष महत्ता का धारणी है क्योंकि इसमें भारत की कम गिनती कौमों के साथ किए गए वह वचन अंकित है जिनके द्वारा उनको उनके विशेष हितों की संविधानक रक्षा का भरोसा दिया गया था। अन्य बातों के इलावा इस फैसले में कहा गया था कि :—

भारत की अल्पसंख्या के हितों की रक्षा के हित में मुल्क के संविधान में विशेष प्रबन्ध किए जाएंगे ... यह एक ऐलान या इक़रार ही नहीं बल्कि सारी दुनियाँ के समक्ष एक पवित्र सुगन्ध है, जिस की पालना करना हमारा परम करना हमारा परम धर्म है।"

जो लोग दूसरी कौमो के मुकाबले अपने कथित ऊँचे-ऊँचे और अधिक सच्चे किरदार की बातें बनाते थकते नहीं उनके ओर से सिख कौम के साथ किए गए विश्वास-घात को सही रूप में देखने और परखने के लिए भारत के पहले प्रधान मन्त्री श्री नेहरू की ओर से कम गिनतीयों विशेष कर सिख कौम की सारी दुनियां के सामने दिये गए उपरोक्त वचनों को ऐसे करड़े शब्दों में जोड़ कर पड़ने की ज़रूरत है, जो इस से पहले दस मार्च, 1931 को इसी कौम के साथ गुरुद्वारा शीश गंज में परमात्मा के हज़ूरी उस मिस्टर गाँधी ने किए थे जिनको कुछ लोग सन्त, कुछ महात्मा और कई अवतार कहते हैं।

सिख कौम की ऐसी दुर्दशा (जिसका मूल कारण यह विश्वासघात और धोखा है, जो इस के साथ ऐसी सौगन्धों और इकरार द्वारा किया गया) का वर्णन करते हुए भाई साहिब सरदार कपूर सिंघ ने भारतीय पार्लियामैंन्ट में कहा था कि :—

"जो लोग भगवान के भय और गुरु के भय से आज़ाद होकर झूठी कसमें और सौगन्धें राजनीतिक आधार पर उठाते हैं ; जिनके मन में शर्म नाम की कोई चीज़ नहीं रह गई, जिनकी आत्मा में धर्म का अभाव हो चुका है, जिनको कोई उनके पापों का दण्ड देने वाला नज़र नहीं आता, उनकी ओर से विश्वास-घात का शिकार हुए, सिवाए अकाल पुरख के दरबार में अरदास करने के और कर भी क्या सकते हैं ? इसीलिए सिख इस समय अकाल पुरख (परमात्मा) के पास अपनी दुःख तकलीफों की निवृनि के लिए अरदास ही कर रहे हैं।"

इस प्रसंग में जुलाई 1947 में बिना बाँटे पंजाब की लैजिस्लेटिव असैम्बली के हिन्दू और सिख मैम्बरों की एक बैठक दिल्ली में हुई, जिसमें सर्व सम्मति से पास किए गए नीचे, दिए फैसले का ज़िकर करना भी लाभदायिक होगा। जिसके द्वारा स्वीकार किया गया कि :—

"हिन्दुस्तान के बँटवारे के बाद पंजाब को जो भाग भारत में रह जाएगा, उसमें यह

अत्यन्त ज़रूरी है कि सिखों के विशेष राजसी अधिकारों को सुरक्षित करने के पूरे प्रबन्ध किए जाएं।"

इस हकीकत की रोशनी में कि जिन हिन्दू मैम्बरों ने उपरोक्त फ़ैसला पास करवाने के समय सिख मैम्बरों का साथ दिया था, उन्होंने ही थोड़े से समय बाद, आज़ादी प्राप्त होने के उपरान्त, सिख कौम को कोई रियायत देनी तो एक तरफ रही, उनको ही उनके जायज़ हकों से वंचित रखने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाना प्रारम्भ कर दिया। इस बारे सन्देह की ज़रा सी की गुंजाइश बाकी नहीं रहनी चाहिए कि हिन्दू लीडर सिख कौम को केवल मूर्ख ही बना रहे थे और अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद उस समय की ताड़ में थे, जब वह सिख कौम की अंगूठा दिखा सकें।

इसके विपरीत सिख, जिन्होंने कभी किसी के साथ धोखा और फरेब करने का दाव नहीं सीखा, हिन्दुओं की कथित कसमों सौगन्धों के जाल में इस हद तक फंस चुके थे कि वह किसी भी बात तक सुनने की तैयार तक नहीं होते थे। आज तो बहुत सारे सूझवान सिख इस नतीजे पर पहुँच चुके हैं कि उस महत्त्वपूर्ण में जब हिन्दू, मुसलमान और सिख कौमों की तकदीरों के फ़ैसले हो रहे थे, उस समय सिख कौम के नुमाइन्दों ने हिन्दू लीडरों की पिछु बन कर अपनी समुच्ची कौम की किस्मत की उनके रहमी-करम पर छोड़कर राजनीतिक सूझ-बूझ को प्रकट नहीं किया, क्योंकि हिन्दू लीडरों के लिए इकरार एक तो केवल लठ्ठी से उछलने वाले ही थे और दूसरा यह एक फराड भी तो हो सकते थे जैसा कि बाद में वह हू-बू-बू साबित हुए। आज सिख कौम के बुद्धिजीवियों की यह पक्की राय है कि उस नाज़ुक समय में सारी कौम की किस्मत को हिन्दुओं के छल-कपट पर निर्धारित करके उस इतिहासिक समय में बहुत बड़े मौके को ऐसे ही गँवा दिया गया।

12 मई, 1947 को लार्ड माउन्टबैंटन, पंडित जवाहर लाल नेहरू, नवाब लियाकत अली खां और सरदार बलदेव सिंघ बर्सानवी सरकार के बुलावे पर हवाई जहाज द्वारा लंदन गए ताकि हिन्दुस्तान के सम्प्रदायिक मसले के हल के लिए आखरी यत्न किए जा सकें। जब मुस्लिम लीग और काँग्रेस के बीच कोई समझौता ना हो सका और पंडित नेहरू ने वापिस लौटने का फ़ैसला कर लिया तो बर्तानवी सरकार के एक प्रमुख अधिकारी ने सरदार बलदेव सिंघ को संदेश भैजा कि :—

"अगर वह एक दो दिन और रूक जाए तो ऐसे प्रबन्ध किए जा सकते हैं; जिनके द्वारा कि सिख अपने पैरों पर खड़े हो कर संसार की तारीख में इज्जत मान से शरीक हो सकेंगे।"

सरदार बलदेव सिंघ ने एकदम ही यह भेद-भरी बात पंडित नेहरू को जा कर

दे दी और नेहरू के कहने पर वहाँ रुक जाने की पेशकश को ठुकरा दिया गया। विदायगी के समय स: बलदेव सिंघ जी ने अख़बारी पत्रकारों के साथ बात करते हुए जोर देकर कहा :—

"सिख अंग्रेज़ों से कुछ नहीं माँगते और न ही उम्मीद करते हैं, सिवाए इसके कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तान से निकल जाएं। सिखों ने जो कुछ भी राजसी अधिकार लेने है वह काँग्रेस और हिन्दू बहुसंख्यक की कृपा से प्राप्त कर लेंगे।"

उस समय तो सरदार बलदेव सिंघ जी ऐसे कठोर और दुःखद शब्द विश्व आधार की शक्तिशाली अंग्रेज़ी ताकत के मुँह पर मार कर बहुत खुश हुए थे, परन्तु इनका जो खुम्यािज़ा आज सारी की सारी सिख कौम को भुगतना पड़ा रहा है उसी कारण आज यह लंगड़ा रही है। कहते हैं कि सरदार बलदेव सिंघ खुद जब आखिरी दमों पर थे तो वह ऐसे मौकों को याद करके रोते तड़पते और अपने आप को कोसते थे कि उन्होंने एक बार नहीं, तीन बार अपनी महान कौम को अपनी किस्मत खुदअख्तियार करने वाले ऐसे महान् मौकों से वंचित रखा है।

ऐसी ही हालत मास्टर तारा सिंघ जी की भी हुई थी, जिन्होंने भी इस सदी के तीसरे दशक में ऐसी पेशकशों को ठुकरा दिया था। 1932 में लंदन में दूसरी गोलमेज़ कॉन्फ्रैंस हो रही थी तो उस समय बर्तानवी सरकार ने सरदार बहादुर शिवदेव सिंघ द्वारा (जो उस समय कौंसल ऑफ इण्डिया के मैम्बर थे) सिखों को यह पेशकश की थी कि "अगर वह अपने आप को काँग्रेस से तोड़ लें तो अंग्रेज़ सिखों की पंजाब और हिन्दुस्तान में इतना राजनीतिक बल दे देंगे, जिसके द्वारा सिंख, हिन्दुस्तान को अंग्रेज़ों की ओर से आज़ादी देने समय राज-सत्ता में तीसरे भाई वाल बन सकेंगे।

इसी ही सबन्ध में अप्रैल 1942 की घटनाओं की याद दिलानी भी उचित और ज़रूरी है। उस समय मिस्टर जिन्नाह ने बर्तानवी सरकार के कुछ उच्च अधिकारीयों के साथ सलाह मश्वरा करके पहले मास्टर तारा सिंघ और फिर महाराजा पटियाला के द्वारा सिखों को पानीपत से लेकर रावी दरिया के किनारे तक के इलाके में एक ऐसे स्वतन्त्र सिख राज की पेशकश की जो पाकिस्तान के साथ नीचे लिखी सतरों के आधार पर कांफैड्रेशन बनाने के लिए रज़ामंद होगी :—

1. सिख इस इलाके पर पूरे तौर से खुद मुख्तायर होंगे।

2. पंजाब में 22 फीसदी तथा और इलाकों में 20 फीसदी सीटें सिखों के लिए सुरक्षित रखी जाएँगी और हाईकोर्टों तथा सुप्रीम कोर्ट में भी यही तनासब कायम किया जाएगा।

3. पंजाब का गवर्नर या मुख्यमंत्री हमेशा एक सिख ही होगा।

4. फौज में सिखों के लिए 40 फीसदी भर्ती सुरक्षित होगी और फौजी हाई कमान में भी यह ही तनासिब कायम होगा।

5. कोई भी ऐसी विधानिक या कानूनी तब्दीलीयाँ कभी अमल में नहीं लाई जाएगीं जो सिखों की बहु-संख्यक को अस्पृश्यता के कारण स्वीकार न हों।

मिस्टर जिनाह ने बड़े गहरे कारणों से सिखों को ऐसी पेशकश की थी, क्योंकि इस तरह पंजाब के इलावा बंगाल का बटवारा भी नहीं होना था। मिस्टर जिनाह को यकीन था कि पंजाब का बटवारा जहाँ सिख कौम की रीढ़ की हड्डी तोड़ देगा, वहाँ वह पाकिस्तान के लिए भी बहुत हानिकारक होगा।

मास्टर तारा सिंघ ने तो तुरन्त ही इस पेशकश को बिना किसी वजह ठुकरा दिया और बाद में महाराजा पटियाला ने भी पंडित नेहरू और सरदार पटेल का कहा मानकर इस को अप्रवान कर दिया।

उपरोक्त तथ्यों की रोशनी में इस बारे में कोई भ्रम बाकी नहीं रह जाता कि उस समय सिख कौम (विशेष कर इसके आगू) मुकम्मल तौर पर हिन्दू असर-रसूख के जाल में फंस चुकी थी और हिन्दू इसको अपना हक लेना बना कर केवल अपने ही हितों के लिए इस्तेमाल कर रहे थे। मिस्टर जिनाह ने उस समय के सिख लीडरों की मानसिक दशा का ज़िक्र बड़े ही अच्छे ढंग से अपने एक लैक्चर में किया था जो उन्होंने क्रैम्बिज यूनिवर्सिटी में भारत में 'मुस्लमानों की राजसी दशा' के विषय पर दिया था। जिन भ्रमों तथा लालचों में सिख उस समय फंसे हुए थे, उनका ज़िकर करते हुए मिस्टर जिनाह ने कहा था :—

"सिखों का समकाली रवइया तर्क-शास्त्र या इन्साफ के किसी भी आधार पर पूरा नहीं उतरता। एक तरफ तो यह अलग कौम होने का दावा करते हैं, और दूसरी तरफ हिन्दुओं के पीछे लग बन कर मुस्लमानों को खत्म करना चाहते हैं। कुर्बान जाएं इन सिख लीडरों ...।"

उस समय तो, भाई साहिब 'सरदार कपूर सिंघ' जो वहाँ मौजूद थे मिस्टर जिनाह की सिख लीडरों पर की गई टिप्पणीयों से नाराज़ हो कर हाल से बाहर आ गए थे, परन्तु जब उसी शाम मिस्टर जिन्नाह को उस होटल में मिले जहाँ वह ठहरे हुए थे तब मुस्लिम नेता ने बड़े अच्छे ज़ज्बे के साथ कहा था :—

"नौजवान ! ज़ज्बात की आँधी में बह जाने को राजनीति नहीं कहते। जो कुछ मैंने कहा है, उस पर ठण्डे दिल से विचार करें और अगर तेरे द्वारा जो कुछ बन पड़ता है तो कुछ कर, वर्ना बड़ा हो कर तू मेरे इन लफज़ों को याद करेगा।"

बहुत सारे सिख आज इन शब्दों को अवश्य याद करते हैं सब से ज्यादा तो याद आते होंगे सरदार कपूर सिंघ को, जिनको पहले कहे गए थे।

सो, उपरोक्त तथ्यों की रोशनी में इस बारे कोई शक-शुब्हा नहीं रह जाता कि :—

1. स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान भारती उपद्वीप में हिन्दुओं और मुसलमानों के इलावा सिखों को तीसरी कौमी इकाई माना जाता था।

(2) बर्तानवी सरकार सिख कौम को भी अपने पैरों पर खुद खड़े हो सकने के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों के मुकाबले पर किसी न किसी शक्ल में राज्य सत्ता सौंपने पर रज़ामन्द थी।

(3) उस समय सिख कौम के सामने तीन रास्ते खुले थे-सम्पूर्ण स्वराज्य या हिन्दुओं और मुसलमानों में किसी भी एक के साथ विधान में अंकित शर्तों पर सांझीवाल।

(4) मिस्टर जिनाह भी सिखों को अपने ओर खींचने के लिए इतना ही उत्सुक था जितना कि हिन्दू।

(5) उस समय सिख कौम ने स्वेच्छा से सभ्याचारक नज़दीकी के अलावा उन की ओर से दिए गए निम्नलिखित पक्के और ठोस इकरारों का यकीन करके अपनी किस्मत को हिन्दुओं के साथ जोड़ने का फैसला किया था :—

(अ) बर्तानवी सरकार के चले जाने के बाद सिखों को उनकी अलग कौमी हैसीयत पर आधारित, भारत के वैधानिक ढाँचे के अन्दर मुकम्मल खुद मुख़्तारी हासिल होगी।

(ब) ऐसा कोई भी विधान सिख कौम पर ठोसा नहीं जाएगा, जो उस को मन्जूर नहीं होगा।

इन कसमों सौगन्धों के अलावा बर्तानवी पारलीमैण्ट के 1947 के 'ट्रांसफर ऑफ पावर एक्ट' में भी इस प्रकार का विधान किया गया कि भारत के विधान केन्द्र के पास डीफैन्स, विदेशी मामले और डाकतार पर आवाजाई के केवल तीन विभाग ही होंगे।

सिख कौम ने तो इन कसमों इकरारों पर यकीन करके आखरी दम तक हिन्दुओं का साथ दिया और देश के बटवारे की डट कर विरोधता की क्योंकि श्री गांधी सुबह शाम अपनी प्रार्थना सभा में ऐलान करते थे कि "देश के बटवारे का मतलब मेरा बँटवारा होगा, जो मैं कदाचित नहीं होने दूँगा।"

परन्तु मौलाना आज़ाद के अनुसार जैसे-जैसे काँग्रेस के हिन्दू लीडर वृद्ध हो रहे थे, उनके अन्दर शक पैदा हो रहा था कि शायद वह अपने जीवन काल में राज गद्दीयाँ न प्राप्त कर सकें, इस लिए कुर्सियों की भूख के कारण वह देश के बटवारे के लिए तैयार हो गए। इनकी इस कलाबाज़ी के कारण ही सिखों और रेड शर्ट पठानों को अत्यन्त तकलीफों का सामना करना पड़ा। इन दोनों कौमों ने कांग्रेसी लीडरों के वायदों और कसमों पर यकीन करके अपना सब कुछ दाव पर लगा रखा था।

इस प्रसंग में 'हिन्दुस्तान टाईमज़' अखबार का ऐडीटर जे. एल. साहनी, जिसने कई हालात आंखों से देखे थे, अपनी पुस्तक 'दि लिड ऑफ' के पन्ना 202 पर लिखता है कि :—

"कांग्रेस के लीडरों ने सिखों और रेड शर्ट पठानों को जिस तरह खराब किया, उस का कारन न तो इन लीडरों की भूल थी और न ही गलती। यह तो एक बहुत बड़ा और न माप किया जाने वाला धोखा था, जो इनकी ओर से जान बूझ कर किया गया था।"

2 जून 1946 की अपनी प्रार्थना सभा में गांधी जी को भी यह हकीकत करनी पड़ी। उनको यह मानना पड़ा कि "देश का बंटवारा कांग्रेस और मुसलिम लीग की सलाह के साथ है"। जब सभा में से किसी ने उठ कर उनको याद दिलाया कि "तुम तो हमेशा कहते आये थे कि देश का बंटवारा मेरे बंटवारे पर होगा।" तब श्री गाँधी जी ने कहा, "मैं क्या करूं, लोग मेरी सुनते ही नहीं और मैं किसी को मज़बूर नहीं कर सकता।' (यह लिड-ऑफ 205) क्या यह पूछा जा सकता है कि यदि कांग्रेस के कार्यकर्त्ता ने भी अपने इकरारों को नहीं निभा सकना, तो फिर देश की ओर से और अन्य कांग्रेसी लीड़रों की ओर से एक लम्बे समय तक भोले-भाले लोगों को झाँसा क्यों दिया जाता रहा था ?

रेड शर्ट पठान तो मुस्लमान थे, इस लिए उनकी अधिक गिनती जल्दी ही पाकिस्तान जैसे इस्लामी मुल्क में खप गई, भले ही गुफ्फार खां और वेंली खां जैसे उनके कई लीडर आज तक भी कांग्रेसी हिन्दू महारथीयों पर विश्वास करने का खुमियाजा भुगत रहे हैं, परन्तु 1947 का साल सिख कौम के लिए तो नये तथा और भी करुणा-मयी संघर्ष का संदेशा ले कर आया। इसके बाद जल्दी ही सारी सिख कौम को जुरायम पेशा करार दे दिया गया।

तब से ले कर आज तक सिखों के साथ मुजरिमों सा सलूक ही किया जा रहा है। आज हरेक सिख को शक की निगाह से देखा जाता है और इनकी पंजाबी प्रदेश जैसी मासूम से मासूम मांग को भी 'खालिस्तान' की शुरूआत कह कर ठुकरा दिया जाता है। आज़ादी के बाद देश की प्रान्तीय सीमाओं को बोली के आधार पर बांटने का असूल कांग्रेस ने अपनी ही ओर से पास किये हुए संविधान पर आधारित होने के बावजूद और बाकी देश का पुनर्गठन और सभी भाषाओं के आधार पर किये जाने के बाद भी जब पंजाबी सूबे की मांग की गई तो इसको ठुकरा दिया गया। इस छोटी-सी हक की मांग को मनवाने के लिए भी सिख कौम को अनेकों मासूमों की आहूति देनी पड़ी और तकरीबन 60,000 लोगों को जेलों की काल कोठरियों में

जाना पड़ा। इतनी बड़ी कुर्बानियाँ देकर भी जो राज्य मिला, वह भी लंगड़ा और अविकसति। 35 सालों के बाद भी पंजाबी राज्य आज भी अधूरा है और जब कभी सिख कौम, जान बूझ कर इस से बाहर रखे गए पंजाबी बोलने वाले इलाकों को इस राज्य के साथ मिलाने की बात करनी है तो पूरे देश में 'खालिस्तान' का भूत खड़ा कर दिया जाता है। यह है भारतवर्ष में 'सैक्यूलर्विज़म' का सही स्वरूप। यहाँ सारे गुणों का ठेका बहुसंख्यकों ने ले लिया है और सारे बुरे गुण अल्पसंख्यक वालों की गोद में पड़ चुके हैं। यही समकाली भारत वर्ष की स्वभाविक विशेषता है।

यहाँ ही उस भाषण की कुछ बातों का हवाला देना भी उचित ही होगा जो लोक सभा के भूत पूर्व स्पीकर सरदार हुक्म सिंघ ने 1947 से जल्दी ही बाद भारतीय विधान सभा में दिया था :—

"जब कभी भी हम कांग्रेस को उस की ओर से सिख कौम के साथ 1929, 1946 और फिर 1947 में किए गए इकरारों की याद दिलाते हैं तो हमें यह कह कर टाल दिया जाता है कि अब हालत बदल चुकी है। यह विधान सभा उसी कैबनिट मिशन प्लान की ही उपज है, जिसने सिखों को तीसरी कौम के तौर पर मान्यता दी हुई थी। हालात में सिर्फ एक ही बदलाव आया है और वह है पाकिस्तान का बनना। क्या मुस्लमानों को पाकिस्तान मिल जाने से सिखों की कौम की हैसियत खत्म हो जाती है ? पाकिस्तान ने अल्पसंख्यकों को अपने देश में से खत्म करने के लिए हिंसा और हंगामे का रास्ता अपनाया था, तुम भी वही काम, चतुराई और चालाकी के साथ कर रहे हो। फर्क तो केवल इतना ही है।"

मिस्टर डी. पैन्टरी, जो अंग्रेज़ी राज्य काल के समय पुलिस विभाग के मुखिया थे, अपनी रिपोर्ट दिनांक 11 अगस्त 1901 (नैशनल आर्कईवज़) नई दिल्ली में लिखते हैं :—

"हिन्दू धर्म के प्रशंसक हमेशा से ही सिख धर्म को बुरी नज़रों से देखते आये हैं क्योंकि इस के गुरु साहिबान ने पूर्णत: सफलता सहित ब्राह्मणवाद पर आधारित छूत छात का भरपूर विरोध किया था। इसी कारण हिन्दुओं की हमेशा से ही कोशिश रही है कि सिख सरदारों के बच्चों को खण्डे की पाहुल (अमृत) ग्रहण करने से रोका जा सके और अधिक से अधिक सिखो को अपनी मज़हबी अकीदे से तोड़ा जाए। हिन्दू मत शक्तिशाली बौद्ध मत को तो पहले ही निगल चुका है और अब इसने सिख धर्म में भी कई जगह दरारें डाल दी हैं।"

जिस सिख कौम ने मानवता और विशेष कर हिन्दू निवासियों के कल्याण हित इतिहास में इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हो और जिस हिन्दू धर्म ने सिखों की कुर्बानियों का उस इतिहास में सब से अधिक लाभ उठाया, आज वही हिन्दू उस से इतिहास में योग स्थान ले सकने का भरपूर विरोध कर रहा है। वही हिन्दू जो इनके कन्धों पर चढ़ कर तख्त और ताज का हकदार बना है, इनको बराबर का भाई मानना तो एक ओर रहा, इनको हर तरह से छोटा दिखाने और मिट्टी में मिलाने पर तुला हुआ है। कहते हैं, आहसान फरामोशी सब से बड़ा पाप परन्तु, इस समय इस की यह क्या परवाह करते हैं ?

आज फिर वही "जै चन्दी" ज़हनियत देश की सरकार और शक्ति में दिख रही है ? देश के असली रक्षकों को पिछाड़ा जा रहा है। इनको जलती आग में झोंका तो जाता है, पर इनकी वीर गाथाओं को प्रैस, प्लेटफार्म, सिनेमा, टी. वी. या रेडियो से प्रसारित करने से संकोच किया जाता है।

सरकारी नौकरियों, फौजी भर्ती तथा तरक्कीयों के समय इनके साथ पक्ष पात से काम लिया जाता है। बंगला देश की डाकुमैन्टरी फिल्म में जान-बूझ कर लैफटीनैंट करनल जगजीत सिंघ का चेहरा नहीं दिखाया कि कहीं दुनियां यह न जान जाए कि इस महान युद्ध का हीरो कोई सिख योद्धा ही था। सिख सिद्धान्तों, सिख रिवायत और सिख इतिहास को धुँधला करने और बिगाड़ने के कोझे यत्न जारी हैं। इसी उद्देश्य से बंदा सिंघ बहादुर को भी "वीर वैरागी' कह कर उस को एक हिन्दु साबित करने की कोशिश की गयी है। यह केवल एक प्रमाण है। सिखों के साथ यह हाल हर क्षेत्र में हो रहा है। सिखों की बोली, सिख धर्म और सिख कलचर की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा है, जितना कि सरकार को देना चाहिए या जितना वह और कौमों की ओर दे रही है। हमें डर है, कहीं इतिहास अपने आप को दुहरा तो नहीं रहा ? हम हर समय देश की सरकार को चेतावनी देते हैं कि सिख कौम को पूरा मान सम्मान दे।

इसलिए देश के हाकमों ! देश भक्तो ! ! इस गाथा को विचारो और देश के भले को मुख्य रखकर देश भक्त सिखों के साथ किये वायदों को पूरा करके सिखों के दिलों को जीतो। इसी में देश का भला है।

---

* यह लेख प्रसिद्ध इतिहासकार डाक्टर गंडा सिंघ की पुस्तक "The Indian Muting of 1857 and the Sikhs को आधार पर लिखा गया है।

10 मई 1857 को मेरठ के कुछ फौजियो ने अंग्रेज सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जो हल्के-हल्के उत्तर प्रदेश के कुछ अन्य हिस्सों में भी फैल गया। इस विद्रोह को कुछ लेखकों ने 'भारत की आज़ादी की पहली लड़ाई' का नाम भी दिया है। भले इस विचार को निरपक्ष और जगत प्रसिद्धि के मालिक इतिहासकारों ने नहीं कबूला। भारत के कुछ राजनीतिक लीडरों ने इस विद्रोह की हद से ज्यादा प्रशंसा की है और इस को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बयान किया है। ये लोग अपने जुनून में इतने आगे बढ़ गए कि इन्होंने इस विद्रोह में हिस्सा न लेने वाले लोगों को धोखा देने वाले और देश के गद्दार कहने से भी संकोच नहीं किया। पंजाबी, और विशेष कर के सिख इन लीडरों के गुस्से का शिकार हुए।

कुछ लोगों ने कहा है कि 1857 की भारत की आज़ादी के लिए लड़ाई' इस करके फेल हो गई थी, क्योंकि सिखों ने धोखा दिया था, और अंग्रेज़ों का साथ दिया था।

सिखों पर विश्वासघाती होने का दोश तभी लग सकता है अगर उन्होंने विद्रोहियों के साथ मिल कर के इस विद्रोह को आरम्भ किया होता और फिर उस से मुँह मोड़ लिया होता, या फिर विद्रोहियों या विद्रोह के काम से बेवफाई की होती। इतिहास इस बात का गवाह है कि सिखों ने न तो विद्रोह को आरम्भ किया था, और ना ही इस में हिस्सा लिया था। विद्रोह फौजियों ने भी विद्रोह आरम्भ करने से पहले न तो सिखो को विश्वास में ही लिया था, और न ही सिखों के साथ कोई सलाह मशवरा ही किया था। उन्होंने तो सिखों को इस विद्रोह में शामिल होने की सूचना भी नहीं दी थी। विद्रोह करने वाले 'पुरबिये सिपाहियों' में इतनी हिम्मत ही नहीं थी कि वह सिखों को विद्रोह में शामिल होने के लिए कहें क्योंकि (पूर्वीयों) उन्होंने ही तो पंजाब में से सिख राज को खत्म करने के लिए 1845-46 में अंग्रेजों की सहायता की थी और उनके ही प्रयत्नों से 1848-49 में अंग्रेज पंजाब पर कब्जा कर सके थे। इसलिए पंजाब के विशेष तौर पर सिखों, के मनों में पुरबीय सिपाहियों के विरुद्ध नफ़रत की आग जल रही थी।

सिख पंजाब के इन दुश्मनों का साथ कैसे दे सकते थे। इन्हीं लोगों ने मुगल बादशाह, बहादुर शाह दूसरा को राज्य सिंहासन पर बैठाया था। सिख दो शताब्दियों से मुगलों के अत्याचार का शिकार होते आए थे, उन्होंने मुगल सल्तनत को साथ दिया था अब वह (सिख) उस कार्य में हिस्सा कैसे ले सकते थे, जोकि मुगल राज्य को फिर से स्थापित करने में सहायी हो सकता था।

विद्रोहियों की सब से अधिक नाराज़गी ईसाईयों से हुई। मेरठ, दिल्ली और साथ लगते कुछ इलाकों में ईसाई मर्द, औरतें तथा बच्चे कत्ल कर दिए गए। सब से पहले मरने वाला आदमी दिल्ली का ईसाई डॉ॰ चमन लाल था, जो कि अपनी डिस्पैंसरी के बाहर खड़ा था। विद्रोहियों ने महाजनों तथा बनिए लोगों की दुकानों को भी लूटा और आगज़नी करके तबाह कर दिया। इस लूटमार के सिवाए विद्रोही कोई ऐसा संगठित यत्न न कर सके कि जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज खत्म हो सकता, न ही अंग्रेजों के प्रशासकी प्रबन्ध को कमज़ोर ही कर सके। जिसके साथ कि अंग्रेज़ों का रूतबा खत्म हो सकता।

यह विद्रोह यू॰ पी॰ के कुछ पूर्वीयों तक ही सीमित था, जोकि बंगाल आर्मी के सिपाही थे। यह विद्रोह यू॰ पी॰ के कुछ हिस्सों और साथ लगते इलाकों तक ही फैल सका, जब कि बाकी के 80% भारत में इसका कुछ भी असर न हुआ। यू॰ पी॰ के भी बहुत इलाके थे जो इस विद्रोह से प्रभावित न हुए। इसकी असफलता का कारण, किसी इकट्ठे संगठन की कमज़ोरी, बिना स्कीम के कार्य और विद्रोहियों के अलग-अलग हितों का होना था।

विद्रोही सिपाहियों की प्रारम्भिक कार्य वाही दिल्ली और नज़दीकी जनता की रूचियों के विरुद्ध ही नहीं थी बल्कि गैर-पूर्वी सिपाहियों, राजपूतों, मरहट्टो, मदरासी, गढ़वाली, डोगरे और पंजाबी मुस्लमानों सिखों और पठानों की रुचियों के विरुद्ध थी,जो कि निर्दोष स्त्रियों और बच्चों के क़ातिलों (विद्रोहियों) का साथ नहीं दे सकते थे।

1857 का विद्रोह असल में हिन्दुओं और मुसलमान सिपाहियों का अंग्रेजी फौजी अफसरों के साथ फसाद या झगड़ा ही था। यह झगड़ा तब आरम्भ हुआ था जब कि हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को यह पता लगा कि जो कारतूस उनको दिये जाते थे, उनमें गाय और सुअर की चर्बी है। इन कारतूसों को मुँह से खोलना पड़ता था। धार्मिक जज्बातों के उजागर से हिन्दू और मुसलमान सिपाही इतने जोश में आ गए कि उन्होंने दिल्ली तथा मेरठ में अनेक लोगों को कत्ल कर दिया। इनका साथ जेलों से रिहा किए गए बदमाशों और अन्य डाकूओं तथा लुटेरों ने दिया।[1]

इन विद्रोहियों ने बादशाह, बहादुर शाह दूसरे को, जोर ज़बर्दस्ती के सथा ही अपना नेता बना लिया, जिसके नाम के नीचे वह हिन्दू धर्म तथा इस्लाम की रक्षा के लिए उठ खड़े हुए। इन फसादियों ने बहादुर शाह को अपने जुर्मों और बुरे कर्मों पर पर्दा डालने के लिए ही लीडर चुना था। फसादी अपने बुरे कामों के लिए बहादुर

---

1. Dr. Ganda Singh, The Indian Muting of 1857 and the Sikh, P-12

शाह को ही ज़िम्मेदार ठहराते थे, जिसकी लीडरी में वह चल रहे थे। असल में इन विद्रोहियों (पंराईयों) ने खुले तौर पर बहादुर शाह से हुक्मों के उल्लंघना की और उसके महलों में जाकर उसकी बेज़ती की। बेचारा बहादुर शाह तो उनके हाथों में एक कठपुतली बन कर रह गया था। प्रसिद्ध इतिहासकार आर. सी. मजुमदार अपनी पुस्तक 'Sepoy Mutiny and Revolt of 1857' के पन्ना 233 पर लिखता है "दिल्ली में सिपाहियों ने तब तक लड़ने से मना कर दिया जब तक कि उनको योग्य तनखाहें ना दी जाएँगी—यह माँग उन लोगों के स्वभाव से मोल नहीं खाती जो 'आज़ादी की लड़ाई' में लगे हुए हों।

बहादुर शाह खुद हालात का शिकार हुआ पड़ा था। उसने विद्रोह को आरम्भ करने, चलाने या फैलाने में रत्ती भर भी हिस्सा नहीं डाला था। उसको तो विद्रोह की खबर ही तब हुई जब विद्रोही सिपाही उसके महलों तक आ गए और उसको विद्रोह की कमांड संभालने के लिए कहा। बहादुर शाह ने असमर्थता जाहिर की पर विद्रोही सिपाहियों ने उसकी एक ना सुनी। उसने आगरे में लैफटीनैंट गवर्नर को मेरठ में फौजी विद्रोह होने पर विद्रोहियों के दिल्ली में पहुँच जाने की खबर पहुँचाई।

विद्रोहियों ने बुज़ुर्ग और कमज़ोर दिल बादशाह (बहादुर शाह) से मन मर्ज़ी से आदेश जानी करवाए और फिर उसको धोखा दे कर शाहज़ादा अनु बकर को अपना नेता चुन लिया। बहादुर शाह ने अंग्रेजों के साथ गुप्त बातचीत आरम्भ कर दी। और कहा कि अगर अंग्रेज उसके परिवार के जान-माल की रक्षा की गारन्टी दें, उसको पैंशनें तथा अन्य सहायता दें तो वह अंग्रेजों के लिए दिल्ली शहर और किले के दरवाज़े खोल देगा।[1] उसकी मुख्य रानी, जीनत महल ने भी अंग्रेजों की इस शर्त पर सहायता देने की पेशकश की। उसके पुत्र की जान बख्श कर बहादुर शाह का उत्तराधिकारी मान लिया जाए और मुगल शाहज़ादों ने भी अंग्रेज़ों को दिल्ली पर कब्ज़ा करने में अपनी सेवाएं पेश कीं, शर्त यह रखी कि उनके निजी हितों को ध्यान में रखा जाए। अपने शासन के थोड़े समय में ही इन शाहज़ादों ने शहर में लूट मचाई और अपने खज़ानों को लोगों के धन-माल से भरा।[2] इस बारे में आर सी मज़ुमदार लिखता है 'यह सब कुछ (घटनाएँ) कोई शक नहीं रहने देती कि बहादुर शाह तथा उसके परिवार ने उन विद्रोही सिपाहियों, जिनका कि वह नेता बना था, के साथ ही विश्वासघात नहीं किया, बल्कि पूरे देश के साथ गद्दारी की थी।'

1. R.C. Majumdar, Page 123.

2. Surendra Nath sen, Fighteen Fifty Seven, P-109.

कुछ रजवाड़े-बलभगढ़ का नाहर सिंघ, झझर का नवाब अब्दुल रहमान और तिवाड़ी का राव तुला राम—एक ओर तो बहादुरशाह और विद्रोही सिपाहियों का साथ दे रहे थे, दूसरी ओर अंग्रेज़ों के साथ गुप्त संधियों के लिए बातचीत कर रहे थे। पर वह अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हुए तथा अंग्रेजों ने उन्हें विद्रोही समझ कर, फाँसी चढ़ा दिया।[1]

विद्रोहियों के लीडर भी असल में अपने अपने हितों की रक्षा के लिए लड़ रहे थे, विद्रोह तो एक बहाना था। इनके बारे मोलाना अब्दुल कलाम आज़ाद लिखता है, "कुछ सम्मानजनक व्यक्तियों के बहुत से लीडर अपने निजी हितों के लिए ही ऐसा कर रहे हैं (विद्रोह में हिस्सा ले रहे थे)। वह अंग्रेज़ों के विरुद्ध तब तक खड़े नहीं हुए, जब तक उनके निजी हितों को नुकसान न पहुँचा। जब विद्रोह छिड़ चुका था, तब भी नाना साहिब ने कहा था कि अगर लार्ड डलहौजी के फैसले रद्द कर दिए जाएं तथा उसकी (नाना साहिब) की माँगें परवान कर ली जाएँ तो वह अंग्रेज़ों के साथ समझौता करने को तैयार है।

रानी झाँसी का इस विद्रोह में बड़ा जिकर किया जाता है, पर वह भी परस्थितियों (हालातों) के हाथों मजबूर हुई विद्रोह में शामिल हुई थी। ऐसा कोई ऐतिहासिक सबूत नहीं है जिससे पता लगे कि झांसी में फौजी विद्रोह की साज़िश रची हो या विद्रोह को चलायां या तेज़ किया हो। असल में तो उसने अंग्रेज़ों को सूचित किया था कि विद्रोहियों ने उस के साथ बुरा सलूक किया है और उसको धन देने कि लिए मज़बूर किया है। रानी झाँसी ने अंग्रेज़ को शान्ति बनाए रखने में सहयोग के लिए भी विनती की थी। उसको निर्दोष जान कर ही 'सागर' के कमिश्नर ने झांसी में तब तक राज करने के लिए नियुक्त किया था, जब तक कि अंग्रेज़ वहाँ अपनी हकूमत न कायम कर लें।

पर जब अंग्रेज़ों ने अपना इरादा बदल लिया और रानी झाँसी पर झाँसी में विद्रोहियों का साथ देने का दोश लगाया, तब रानी ने विद्रोह के बारे में अनभिज्ञता प्रकट की और अंग्रेजों की सरकार के प्रति वफ़ादारी ज़ाहिर की। अंग्रेजों ने रानी की इन बातों पर विश्वास नहीं किया और झाँसी में गदर और कत्लेआम के लिए उसको ही ज़िम्मेदार ठहराया। इन हालातों में रानी ने अंग्रेज़ों के साथ लड़ना ही ठीक समझा और जंग में शहीद हो गई।

(आर. सी. मजूमदार, पन्ना—१५५)

---

1. Surendra Nath Sen, Eighteen Fifty Seven, P-91-111.

2. Dr. Ganda Singh The Indian Muting of 1857 and the Sikhs, P-16.

विद्रोह बिना किसी साज़िश के और हिन्दुओं तथा मुस्लमानों में बिना किसी समझौते के छिड़ पड़ने के कारण हिन्दुओं तथा मुस्लमानों में झगड़ा शुरू हो गया। मेरठ के सिपाही दिल्ली में आए तो भगदड़ मचने के कारण अनेकों ही मुसलमानों के घर लूटे गए और उन पर जुल्म किए गए। प्रतिकर्म में मुसलमानों ने हिन्दुओं के विरुद्ध ज्रहाद आरम्भ कर दिया। कुछ चालाक मुस्लमानों ने विद्रोह को, इस्लामी बादशाह को पुन: स्थापित करने के लिए उपयोग करना चाहा। बरेली, बिजनौर, मुरादाबाद और अन्य स्थानों में हैदरी झंडा लहराया गया—जहादियों ने हिन्दुओं को लूटा तथा कत्ल किया। इस तरह मुस्लमानों तथा हिन्दुओं में फूट पड़ गई। कई जगह हिन्दुओं ने अंग्रेजी सरकार की रक्षा के लिए बिनिति करी और ब्रिटिश हुकूमत की जीत के लिए प्रार्थनाएँ की।

इस तरह 1857 के विद्रोह को अच्छी तरह पढ़ने से पता लगता है कि हर कोई अपने ही हितों के लिए लड़ रहा था, देश की तो किसी को भी चिन्ता नहीं थी। विद्रोहियों का सरदार मुगल राज्य (बहादुर शाह) रानियों, शहज्रादे और विद्रोह के और 'लीडर'—सब को अपने हितों अथवा स्वार्थों की पड़ी हुई थी। अवध के सिपाही अपने राज को स्थापित करने के लिए लड़े, नाना साहिब तथा रानी झाँसी ने अपने ही हकों को सामने रखा। इनके सिवाय कई छोटे मोटे 'उद्यमी लोग' जिनमें देश भक्ति की भावना नाम मात्र भी नहीं थी, ने विद्रोह को निजी प्राप्तियों के लिए एक सुनहरी मौके के लिए उपयोग किया। खान बहादुर खान रूहेल खण्ड नायब निज़ाम (वायसराय) बन बैठा। सहारनपुर के बनजारों ने अपना राजा चुनकर स्थानिक प्रशासन संभाला। अलग-अलग जगहों पर गुजरों के कई 'राजे' थे। उन्होंने फतवे (Fatva) को अपना राजा चुन लिया। मथुरा के ज़िले में एक देवी सिंघ नामक व्यक्ति 14 गाँवों का राजा बन बैठा। इस तरह एक डाकू महिमाजी वादी और एक मराठा ब्राह्मण बेलसार -धन-सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए विद्रोहियों के साथ मिल गए।

विद्रोही सिपाही तथा उनके नेता विद्रोह की आग को पूरे देश में न फैला सके, बल्कि विद्रोह यू. पी. के कुछ इलाकों और दिल्ली तथा इसके पास के इलाकों तक ही सीमित रहा। पंजाब, बंगाल, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात, सिन्ध, राजस्थान, जम्मू-कश्मीर के लोगों ने इस विद्रोह में हिस्सा न लिया, क्योंकि उनको विद्रोहियों के 'मनोरथ' के बारे में शक था। यह बगावत तो पूरी फौज में भी न फैल सकी, बल्कि फौज के एक हिस्से बंगाल आरमी के कुछ सिपाहियो ने ही बगावत की थी। बंगाल आर्मी के बाकी फौजी तो बल्कि अंग्रेज़ों की ओर से विद्रोहियों के साथ लड़ रहे थे। मद्रास आर्मी तथा बम्बई आर्मी तो बिल्कुल शान्त रही तथा अंग्रेज सरकार की वफादार रहीं।

विद्रोह को चलाने वाले पूर्बी सिपाहियों पर दूसरे प्रान्तों के लोग भला विश्वास भी कैसे कर सकते थे ? इन पूर्बीयों ने ही तो महाराष्ट्र, राजस्थान, आसाम के ऊपर अंग्रेज़ी हुकूमत की स्थापना में अंग्रेज़ों का साथ दिया था। यह अंग्रेजों के हाथ ठोके बने और गोरखों, पठानों तथा सिखों को अंग्रेज़ों की हुकूमत के अधीन करने में सहायक हुए। ऐसे देश-द्रोहियों के अन्दर देश प्रेम की भावना का एक दम पैदा हो जाना एक नामुमकिन बात थी। असल में इन्होंने देश प्रेम करके विद्रोह नहीं किया था बल्कि धार्मिक भावना के करके किया था।

जैसे कि पहले बताया जा चुका है कि यह पूर्वी सिपाही 1845-46 तथा 1848-49 की अंग्रेज़-सिखों की लड़ाईयों में अंग्रेज़ों की ओर से सिखों के साथ लड़े थे। तेज सिंघ और लाल सिंघ भी पूर्वी ही थे, जिन्होंने अंग्रेज़ों के साथ गुप्त इकरारनामे करके अंग्रेज़-सिखों की लड़ाईयों में सिखों के साथ विश्वासघात किया था। याद रखना चाहिए कि तेज सिंघ उस समय सिख फौजों का कमान्डर-इन-चीफ़ था और लाल सिंघ सिख राज का प्रधान मन्त्री था। इसके इलावा, 1857 में जबकि विद्रोह छिड़ा, अंग्रेज आम तौर पर पूर्वी-रैजीमैंटों और पूर्वी सिक्ख अफसरों की सहायता से ही पंजाब में राज चला गए थे। फिर मुसलमानों के एक हिस्से से विद्रोह को पुनः से मुगल राज्य की कायमी के लिए उपयोग किया, इस बात को भी सिख सहार नहीं सकते थे। सिखों ने सतारहवीं तथा अठारहवीं सदी में भारी संघर्ष करके और अनन्त शहीदियों प्राप्त करके तो मुगल राज को खत्म किया था, सिख ऐसे राज की पुनः स्थापना में हिस्सा कैसे डाल सकते थे ?

इसलिए अन्त में हम ये कह सकते हैं कि सिखों और भारत के अन्य लगभग 80% लोगों ने 1857 के विद्रोह में हिस्सा नहीं लिया था, क्योंकि :—

(1) विद्रोही फौजी तथा सिपाही देश की आज़ादी के लिए नहीं लड़े बल्कि अपने अपने स्वार्थों के लिए लड़े थे। इस संबंध में प्रसिद्ध इतिहासकार सर जादू नाथ सरकार की सलाह विशेष ध्यान माँगती है। वह लिखता है :—

The Sepoy Mutiny was not a fight for freedom. It was not a rising of the people for polictical self determination, but a conspiracy of mercenary soldiers (only of the North Indian army) to prevent the cunning destruction of their religion by defiling their bodies with pig's lard and covi's fat which were used in lubricating the paper parcels of cartridges...

'... A number of dispossessed dynasts, both Hindu and Muslim exploited the well-founded caste-suspicions of the Sepoys and made these simple folk their cats-paw in a gamble for recovering their thrones. The last scions of the Delhi Mughals or the Oudh Nawabs and the Peshwa, can by no ingenuity be called fighter for Indian freedom.'

(Sri. Jadunath Sarkar, Hindustan Standard, Puja Annual 1956 P-22)

मौलाना अबदुल कालम आज़ाद ने भी इसी तरह के ख्याल प्रकट किए है। वह कहते हैं :—

"In the light of available evidence, we are forced to the couclusion that the uprising of 1857 was not the result of careful planning not were there any master-minds behind it.'

और :—

'As I read about the events of 1857, I am forced to the conclusion that the Indian national character had sunk very low. The leaders of the revolt could never agree. They were mutually jealous and continually intrigued against one another ..... In fact these personal jealousies and intrigues were largely responsible for the Indian defeat."

(Surendra Nath Sen, Eighteen Fifty-seven, Publication Division Govt. of India, New Delhi, 1957)

पूर्वी सिपाही जिन्होंने विद्रोह आरम्भ किया था, शक्की किरदार के मालक थे। कुछ समय पहले ही उनकी सहायता के साथ अंग्रेज सिखों, गोरखों, मरहट्टों पठानों तथा आसाम वासियों पर हुकूमत करने में सफल हुए थे। उनका साथ कौन देता ?

3. कुछ विद्रोही मुस्लमान पुनः से सारे देश में मुगल हुकूमत कायम करना चाहते थे। इस देश के लोग बीते समय में मुगल अत्याचारों का स्वाद चख चुके थे। वह दोबारा मुगल राज्य की स्थापना नहीं चाहते थे। सिखों ने तो कुर्बानीयाँ देकर मुगल राज समाप्त किया था। वे मुगल राज्य की पुनःस्थापना के ख्याल से भी नफ़रत करते थे।

4. विद्रोही सिपाहियों कारण ही दिल्ली में लूटमार तथा आगज़नी की घटनाएँ हुई। हिन्दूओं तथा मुस्लमानों में फसाद हुए, जो बाद में यू॰ पी॰ के और अन्य हिस्सों में भी फैल गए। ऐसा विद्रोह जिसने हिन्दूओं मुस्लमानों को भी आपस में लड़ाया, उसमें वह कैसे शामिल हो सकते थे ?

अगस्त की पन्द्रह

—याद की तख्ती से—इतिहास के पृष्ठों में से प्रि: सतिबीर सिंघ

जब भी पन्द्रह अगस्त आती है, अपने साथ यादों का तूफान ले कर आती है। कई यादें इतिहास के पृष्ठों पर गढ़ी हुई हैं और कुछ अभी सुबह की ओस की भाँति ताज़ा हैं। यह याद तो नित्य नई ही रहेगी कि हमने जेहलम के ढोले छोड़े, गुरुद्वारे का ठन्डा पानी छोड़ा, बाग़ महलों के घर छोड़े। चलती गोलियाँ, जलती आगों, तकबीर तथा अल्लाह-हू-अकबर के गूँजते नारों और चलते हुए में फौजियों की हिरासत में, बन्दूकों की छाँव के नीचे साँस दबाए, दबी आवाज़ों में 'फिर कभी न आएंगे' कहते हुए 'अटारी' कूदा। जब तक साँस है वह समय कभी भूलने नहीं लगा पर कुछ यादें ऐसी हैं जिनको याद की तख्ती की जगह इतिहास के पृष्ठों में से ढूंढ कर निकालना पड़ेगा। बुजुर्गों ने एक पीढ़ी की उमर 20 साल बताई है। बीस सालों में दूसरी पीढ़ी पहली की जगह आम करके ले लेती है। 24 अगस्त 1945 को जापानियों ने जर्मनियों के बाद इतिहादियों के आगे हथियार फैंक दिए थे। उस घटना को पूरे 41 साल हो गए हैं। इसलिए आज की सिख जत्थेबन्दी को आज के दिन कुछ अनोखी यादें सुनानी है ताकि ये वे भूलें न करें जिनके द्वारा कौम ने पिछले तीन दहाकयों में ठोकरें खायी और खा रही है।

आठ अगस्त 1945 को जर्मनी ने हथियार फैंक दिए। चर्चल ने अपनी हर-दिल-अज़ीज़ी का मूल्य निकालने के लिए इंग्लैंड में वोटों (elections) का ऐलान कर दिया। जुलाई में आम वोटों में इंग्लैंड के लोगों ने चर्चल को थका तथा निरोल जंगी मुखिया जान कर वोटें न डालीं और हकूमत की बागडोर लेबर पार्टी के मुखिया ऐटली को दे दी। जब 8 अगस्त 1945 को हिरोशिमा और फिर 9 अगस्त को नागासाकी पर अमरीका ने ऐटम बम फैंका तो जापानियों ने हथियार फैंकने में भला समझा। हिन्दुस्तान में 'हिन्दुस्तान छोड़ो' की बात ज़ोर पकड़ गई। लम्बी बड़ी जंग के कारण बर्तानिया सख्त आर्थिक संकट में फँस गया। ऐटली ने जहाँ अपनी आर्थिक पॉलिसी का ऐलान किया वहाँ राजनीतिक नीतियों का भी विस्तार बता दिया। ऐटली के ब्यानों से स्पष्ट था कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तान छोड़ने के लिए तैयार हैं, पर उसने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा कि बड़ी समस्या यह है कि वह हकूमत की बागडोर किस के हवाले करें। कांग्रेस ने उस ख्याल को पुन: दोहराया कि अंग्रेज़ छोड़ जाएं बाकी हम आपस में सम्भाल लेंगे। पर मुहम्मद अली जिनाह ने स्पष्ट अक्षरों में कहा कि अंग्रेज़ छोड़े ज़रूर पर पहले बँटवारा करें। क्विट इण्डिया की जगह उसने 'डीवाईड एण्ड क्विट' का नारा दिया। ज़हाँ तक उन्होंने कह दिया कि या हिन्द का बँटवारा करवाएँगे या इसको तबाह बर्बाद। (We shall have India divided or we shall have India destroyed)1 । इसी आधार पर नए चुनाव हुए। सिख चक्की के दोनों पुड़ों में पिसे जा रहे थे। उनके मुखियों को सूझ ही नहीं रहा था कि क्या हो रहा है। लम्बी बात न होने के कारण कोई ठोस बात न कह सके और न ही दूसरों तक दर्शा सके। इतना ज़रूर कहते रहे कि सिख हिन्दुस्तान में तीसरी कौम है। चुनाव हुए, कांग्रेस के साथ समझौता करके कुछ सीटें छोड़ दी गईं। शिरोमणि अकाली

दल ने 32 में से 23 जीत लीं। तीसरी कौम की बात अंग्रेज़ों ने मान ली पर यह तीसरी कौम चाहती क्या थी, नेता प्रकट न कर सके। यदि कुछ प्रकट कर सके तो उस पर टिक न सके। रोज़ नई बात, नए चढ़ते सूरज नई स्कीम और हर दिन नया पाद। गुरु गोबिन्द सिंघ जी अपने आखरी हुक्मों में पंथ को कह गए थे कि "सियासत पढ़नी" पर बदकिस्मती से किसी ने भी सियासत न पढ़ी। सिख मुखियों की सियासत शिरोमणि कमेटी के इर्द-गिर्द या अधिक से अधिक असैम्बली की मैम्बरी के चारों ओर घूमती है। शातिर अपनी नयी चालें खेल रहे थे पर हमारे नेता नए स्टैंड बनाने पर ही लगे हुए थे। 1946 के साल में कई स्कीमें बनीं और बिगड़ीं। जिस वातावरण को बनाने और आत्मनिर्णय की बात आज फिर 40 सालों के बाद चलाई गयी है, वह हमारे नेता उस समय ही ले सकते थे केवल दृढ़ इरादे के साथ विचार पेश करने की ज़रूरत थी। हम किसी ऊँची राजनैतिक जगह से गिरे हैं, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इंग्लैण्ड में बातचीत करने के लिए तीन नुमाइन्दे लेकर सरकार ने बुलाए। जवाहरलाल, जिन्नाह और बलदेव सिंघ। पर सिखों की बदकिस्मती सरदार बलदेव सिंघ, जवाहलाल को ही अपना लीडर कहने लग पड़ा और ऐटली ने भी कह दिया कि जब सिखों का नुमाइन्दा अपनी अलग शख्सीयत ही नहीं मानता तो नुमाइन्दगी देने का सवाल ही नहीं उठता। इस बात को ऐटली ने अपनी आत्मकथा "यह कैसे हुआ' (As it Happened) में लिखा है। उसने यह भी लिखा कि सिखों की लीडरशिप उच्च कसौटी की न होने के कारण कौम का कुछ न संवार सकी।

केन्द्र में सांझी सरकार के फाइनैंस मिनिस्टर लियाकत अली खाँ ने सरदार पटेल को दिन में ही तारे दिखा दिए और मौलाना अबुल कालम आज़ाद की पुस्तक "इण्डिया विनज़ फ्रीज्म" के अनुसार सब से पहले सरदार पटेल ने ही पाकिस्तान माना। लार्ड माउन्टबेटन की कोशिशों द्वारा जवाहर लाल भी हिन्दुस्तान का बँटवारा मान गये और पाकिस्तान समक्ष आया। गाँधी को केवल बताया ही गया, पूछा किसी ने नहीं। बंटवारा मानने पर जवाहर-जिन्नाह और बलदेव सिंघ ने अपनी तकरीरें ब्राडकास्ट कीं। पंडित जवाहल लाल ने तकरीर के अन्त में "जय हिन्द" तथा जिन्नाह ने पूरे ज़ोर से "पाकिस्तान ज़िन्दाबाद" कहा। जब बलदेव सिंह की तकरीर समाप्त हुई तो उस ने कोई न फतेह या जय हिन्द नहीं बुलाई। इससे स्पष्ट था कि सियासी तौर पर सिखों को कुछ नहीं मिला था। एक ने हिन्द की जय बोली और दूसरे ने पाकिस्तान की सदा सलामती चाही। सिखों के लिए बड़ा सवालिया निशान यह था कि वह किस की जय करे और किस को ज़िन्दाबाद कहें। तीसरी कौम बर्बाद हो गयी। इसको सचमुच खून का दरिया तैरना पड़ा।

यह थी बंटवारे के समय सिआसत की अवस्था। कौम सब कुछ बोल सकती थी जिसकी कमी अब महसूस करती है पर नेताओं ने दूर नज़रिये से नहीं देखा और अपनी मौजूदगी खतरे में डाल ली। हमारी सियासी सूझ की कमी का नक्शा लेखकों, डायरी लिखने वालों तथा मुखियों ने खूब खींचा है। कैम्बल जानसन जो लार्ड माउन्टबैटन का पर्सनल सैक्रेटरी था, ने अपनी पुस्तक "मिशन विद माउन्टबैटन" में बेझिझक हो कर लिखा है कि "सिख नेता

यह न बता सके कि वे चाहते क्या हैं? वे सिर्फ यह ही कह रहे थे कि पाकिस्तान न बनाओ। पर पाकिस्तान हकीकत बन गया था। सो वह कोरे दिमागों वाले कोई सुझाव पेश ही न कर सके। बहुत कम लोगों को पता है कि सरदार बलदेव सिंघ ने अकाल चलाना (स्वर्गवास) से कुछ समय पहले शिमला क्लब में लैक्चर करके बताया था कि अंग्रेज़ और जिन्नाह सिखों को पूर्ण अख्त्यारों वाली सीटि लेने के लिए तैयार थे, वे ही थे जिन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया। फिर एक घटना भी सुनाई कि जब लन्दन की मीटिंग, 1947 अप्रैल की नाकामयाब हो गई और नेहरू जी उठ कर चले गए तो कमरे में जिन्नाह साहब और मैं रह गए। मैंने मुहम्मद अली जिन्नाह से पूछा कि आप को कितना बड़ा पाकिस्तान चाहिए तो उस समय मेज़ पर पेपर वेट पड़ा हुआ था, उठा कर जिन्नाह ने कहा। बलदेव सिंघ, भले इतना ही हो पर लेना पाकिस्तान है। माउन्टबैटन को भी पता लग गया था कि पाकिस्तान दिए बगैर बात नहीं बनेगी। कैम्बल जानसन ने जब मीटिंग की समाप्ति के बाद डूडलज़ (टेढ़ी-मेढ़ी लाईनों, जो मनुष्य खाली समय कागज़ पर खींचता रहा है।) इकट्ठे किए थे तो मुहम्मद अली जिन्नाह ने एक महल बना कर इस्लामी झण्डा फहराया हुआ था और लिखा हुआ था पाकिस्तान ज़िन्दाबाद। आज भले जो मर्ज़ी कहे पर यह एक सच्चाई है कि सिख लीडर यदि समझदारी के साथ मुहरें खेलते तो कौम के लिए सम्मान वाली जगह प्राप्त करवा सकते थे। फिर जब सियासी बाज़ी हार गए तो और गलत तरीकों का इस्तेमाल करने की सोचने लगे। यहाँ यह ही कहना बनता है कि इस समय सिख कौम के पास ऊँचे दर्जे की लीडरशिप नहीं थी। इसी तरह ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन (लॉस्ट डेज़ ऑफ ब्रिटिश राज्य) में 'मोज़ले' ने सिख मुखियों के सियासी दिवालियेपन का ज़िक्र किया है। वह लिखता है, इधर दिल्ली में सिखों की साँस की नस काटी जा रही थी उधर सिख नेता लापरवाही में मस्त दाहड़ियों को मरोड़े दे रहे थे, हवा में तलवारें घुमा रहे थे।' वी. पी. मून ने अपनी पुस्तक 'बाँटो और छोड़ो' (डिवाइड एण्ड क्विट) में स्पष्ट लिखा है कि "सिख नेता बेवकूफी की हदें टापने तक हरकतें कर रहे थे। जब उनके पास तक कोई बात पहुँचाई भी जाती थी तो वे कान नहीं सुनते थे।" कई एक मिसालें मून ने भी दीं हैं। सो वह सब कुछ हुआ जिसका पता भी किसी को नहीं था।

"सारी धरती हलचल भई छाड़े घर बार।" कौम की बदकिस्मती की लम्बी दास्तान 15 अगस्त 1947 से शुरू हो गई। इस अमावस्या की काली रात में सिर्फ एक ही उजाले की किरण थी कि सिख -एक जगह इकट्ठे हो गए थे। 47 की हलचल ने सिखों को मानसिक तौर के साथ-साथ शारीरिक तौर पर भी एक दूसरे के नज़दीक लाया था। सिर्फ एक समझदार 'रणजीत सिंघ' की ज़रूरत थी जो उन्हें ऊँची-सियासी जगह दिलवा सके। पर विशाल हिन्दुस्तान की ओर देख कर सिख नेता अपनी हस्ती ही मिटा बैठे तथा ये भी दलीलें देने लग गए कि 'लोकतन्त्र आ गई है अपना राज्य है, साँझे चुनाव है, राज्य भाग में हिस्सा बँटाओ।' इस डर और लालच के नीचे उन प्रमुख लीडरों ने कौम को सियासी जगह दिलवाने की जगह बल्कि कौम को पीछे लग और निर्बल बना दिया। नेताओं ने दूसरों के साथ बैठना शुरू कर दिया। गुरु गोबिन्द सिंघ जी का पंथ (धर्म) 'न्यारा' ही न रहने दिया। स्टेटमैन के प्रसिद्ध सम्पादक

इन स्टीफनज़ ने उस समय भी और फिर अपनी पुस्तक में ठीक लिखा है कि "नेताओं के बिना कौम मार खा रही है और उस वक्त तक ठोकरें खाती रहेगी जब तक इसकी ऊँच कसौटी के स्याने, बेगर्ज़ और बेझिझक नेता नहीं मिलते। कौम इस आस में रही है कि कोई ऐसा नेता मिले जो इस को खोई हुई इज्ज़त दिलवाए।"

प्राचीन पंथ प्रकाश में लिखा है कि एक बार कलगीधर (गुरु गोबिन्द सिंघ जी) प्रसन्न चित्त बैठे थे तो सिंखों के कारनामें याद कर बख्शिश कर रहे थें। बख्शिश के दर आ कर उन्होंने कहा कि सिखों कुछ माँगों। संगत में से एक ने उठ कर कहा महाराज पंजाब की दात हो।

" चहै पंजाब अब, हम मल लए।"

महाराज ने कहा : दक्षिण माँगो, पहाड़ माँगो, समुद्र और पूर्व पश्चिम भी माँगो। ये कहते रहे कि हम केवल पंजाब चाहते हैं। महाराज ने फिर फुरमाया था :—

माँगों जागीर घनेरी, जितनी चाहो सोउ लिहु घेरी।

पर वे पंजाब से आगे न गए। आखिर महाराज ने पूछ ही लिया कि बार-बार पंजाब क्यों माँगते हो तो एक ने कहा, "महाराज शरीके को बताना है।"

शरीके में बहु परै। लवै बदले हम सचै। २७१ (पृष्ठ ४९, छाप चौथी)

भाई रत्न सिंघ जी ने आह का नारा मारते हुए लिखा है कि देखो किस्मत कौम की कि मालिक देना चाहे विलायतें पर यह रहना चाहें घर के पास। ज़रा भी लम्बी नज़र नहीं थी न ही लम्बी दाए। लम्बी नर और लम्बी दाए दें सच्चे पातशाह।

भारतीय इतिहासकारों का सिखों के प्रति रवैया

स: मान सिंघ 'मानसरोवर वीकली, नई दिल्ली

देश की स्वतन्त्रता की जंग में सिख कौम ने जो शानदार रोल अदा किया है उस को भारत के इतिहास में थोड़ा-सा भी स्थान नहीं मिला। महात्मा गाँधी की प्रसिद्ध पुस्तक "माई एक्सपैरीमैंटस विद-टुथ" पहली बार 1927 में प्रकाशित हुई, जब अकाली लहर पूरे यौवन पर थी। भले उस पुस्तक में 20वीं सदी के दूसरे दशक तक के हालात थे, पर गाँधी जी अकाली लहर से प्रभावित हो कर अगर सिखों के समझने के बारे ज़रा सी पीछे की ओर नज़र मारते तो आप की आँखों के आगे नामधारी लहर, कामागाटामारू जहाज़ की दुर्घटना और गदर पार्टी का इतिहास अपने आप ही सामने आ जाता और सरदार अजीत सिंघ जी की सरगर्मियाँ भी सामने आ जातीं पर आपने अपनी पुस्तक में सिखों का ज़िक्र तक नहीं किया। सिख का अक्षर अगर मिलता है तो केवल एक जगह, पृष्ठ 297 पर जहाँ आप जलियाँवाला बाग की दुर्घटना का जिक्र करते हुए कहते हैं कि यहां हिन्दू, मुसलमानों तथा सिखों का साँझा ख़ून बहा है। बस और कहीं भी नहीं। सच्चाई के तजुर्बे करते गाँधी जी ने सच्चाई का ही बड़ी दलेरी के साथ कत्ल किया है और देश के आज़ाद होते ही आप ने निर्दोष सिखों को अपनी

प्रार्थना सभाओं में काफी कोसा है। बुरा बुरा कहते हुए भी अगर गाँधी जी सिखों के ऊँचे गुणों को अपने ही ढंग से प्रकट कर जाते तो भी हमें आप जी पर कोई गुस्सा न होता।

गाँधी जी से चार कदम आगे भारत के 'लौह पुरुष' सरदार पटेल साहिब निकले जिन्होंने आज़ादी के केवल 56 दिनों बाद ही, कहा जाता है कि पंजाब सरकार को इशारा किया कि पंजाब के सारे ज़िलों के डिप्टी कमिश्नरों के नाम एक पॉलिसी-लैटर जारी किया जाए कि सारे सिखों की कर्मिनल ट्राइबज़ (ज़राइम पेशा जात) में गर्दानियां जाए। वह खुफिया सरकूलर पंजाब के उस समय के मुख्य मन्त्री डाक्टर गोपी चन्द जी भार्गव ने तुरन्त 10 अक्तूबर, 1947 को जारी कर दिया जो सरदार कपूर सिंघ जी, आई॰ सी॰ एस॰ ने अपने केस के डिफैन्स में अदालत में पेश किया। सरदार पटेल जी ने हो सकता है कि उपरोक्त सरकूलर लैटर काज़ी नूर मुहम्मद के सिखों के दिए सर्टीफिकेट को रद्द करवाने के लिए जारी करवाए हो और सिखों को आज़ाद भारत में 'ज़राइम पेशा' की सनद दी हो।

1959 में मौलाना आज़ाद की पुस्तक "इण्डिया विनज़ फ्रीडम" जब प्रकाशित हुई तो ख्याल किया था कि यह कुरान शरीफ की कमेन्टरी लिखने वाला खुदाप्रस्त मौलाना सिखों के साथ इन्साफ करेगा पर उसने भी बेहद मायूस किया। उसने भी गाँधी जी और पटेल जी का पक्ष लेते हुए विचारे सिखों को बदनाम करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मौलाना साहिब जो अकसर फरमाया करते थे कि "मसलहत्त ईमान की मौत है" देश के बँटवारे के समय हुए जातीय दंगों का ज़िक्र करते, शायद मसलहत्तन अपनी पुस्तक के पृष्ठ 246 पर लिखते हैं।

When the reports of massacres in the West Pubjab reached Delhi, Muslims in the city were attacked by mobs of the uruly men, some sikhs took a leading part in organising those murderous attacks in Delhi.

अगर अपने ईमान को हाज़िर जान कर कहीं यह लिख जाते कि पश्चिमी पंजाब में गैरतमन्द सिखों ने अपनी बहू-बेटियों की असमत बचाने के खातिर अपने हाथों से उनकी गर्दनों पर तलवारें चलाईं और कई पोठेहार के गाँवों में सिख बच्चियों ने कूँओं में छलांगें लगाकर कूएँ भर दिए और अपने धर्म और अपनी इज़्ज़त पर आँच तक नहीं आने दी, तो निश्चय ही मौलाना आज़ाद का नाम भारत के इतिहास में सदा चमकता रहता।

आज़ाद भारत के पहले राष्ट्रपति और महान् देश भक्त डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी ने भी अपनी जीवनी प्रकाशित की पर आप ने भी सिखों को इन्साफ नहीं दिया।

पंडित नेहरू जी ने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' (Discovery of India) में सिखों के बारे में कोई ज़िक्र नहीं किया। हाँ, आप जी ने अपनी ऑटोबायोग्राफी में सः भगत सिंघ, मः अजीत सिंघ, गुरु का बाग, जैतो आदि मोर्चों का ज़रूर ज़िक्र किया और गुरुद्वारा लहर की शानदार प्रशंसा की है। आप ने सारी उमर ही बाबा खड़क सिंघ जी का जो सत्कार किया है वह ब्यान का मुहताज़ नहीं। खुशी की बात यह है कि आप जी ने सिखों को पेश करने का ज़रा भी प्रयत्न नहीं किया।

संत विनोभा भावे, जो गाँधी जी के बहुत ही श्रद्धालु चेले थे और भूमि रक्षा के लिए जिन्होंने लगभग सारे देश का पैदल रटन किया, ने मौका पा कर खालसे की कृपाण पर अनावश्यक हमला किया और इसको "आऊट डेटिड वैपन" (पुराना हथियार) कह कर सिखों के हृदय छलनी किए थे।

हमारे समकालीन जरनलिस्ट श्री दुर्गादास जी ने 1969 में एक पुस्तक 'इण्डिया फरॉम कर्ज़न टू नेहरू एण्ड आफ्टर' प्रकाशित की है। उसने भी सिखों के साथ भारी अन्याय किया है और पंजाबी होते हुए पंजाब के महान् देश भक्त सपूतों को पूरी तरह ही आँखों से ओझल कर गया।

1956 में अमृतसर में कांग्रेस का 21वां समागम श्री धेबर भाई जी की प्रधानगी में हुआ, जिसके अभिवादन कमेटी के प्रधान ज्ञानी गुरुमुख सिंघ 'मुसाफिर' थे। उस अवसर पर पंजाब में 'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' नामक एक भारी जिल्द प्रकाशित की गई। उस पुस्तक के दर्शन करके मेरा दिल बहुत दुःखी हुआ। दुःखी होना ही था 'शिबली का फूल' जो था। बाबा खड़क सिंघ जी का या और किसी भी महान् देश भक्त का नाम तक इस पुस्तक में नहीं। "सिख गुरु साहिबों के कर्तव्यों "के नाम का एक लेख इस कदर संक्षेप में दिया गया है, किसी पर भी कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। अकाली या बबर अकाली लहर का कहीं रैफरैंस भी नहीं और न ही गदर पार्टी के अमर शहीदों का कोई नाम है।

1969 में गाँधी की जन्म-शताब्दी मनाई गयी। भारत की सभी चील-कौवों की कहानियाँ रेडियो और टेलीविज़न पर नशर की गई, पर सिखों को शायद भारतवासी ही न समझा गया। हालांकि उन्होंने चीन और पाकिस्तान के हमलों के समय नयी नयी भारी वीरता प्राप्त की थी और देश भक्ति दिखायी थी।

1972 में आज़ादी की सिल्वर जुब्ली सरकारी स्तर पर मनाई गई है। मैंने उस समय की भारत सरकार को वक्त सिर चेतावनी दी थी कि उस जश्न पर सिखों के आज़ादी के सहयोग को ज़रूर संसार के सामने लाया जाए। डाक्टर शंकर दयाल शर्मा, प्रधान ऑल इण्डिया कांग्रेस, के पास मैं आल इण्डिया सिख कौसल का डैपूटेशन इसी संबंध में ले कर गया था, जिस में सरदार ज्ञान सिंघ जी, ऐडवोकेट सुप्रीम कोर्ट, ऐयर कमान्डर महिन्दर सिंघ जी (रिटायर्ड) और प्रो: परमान सिंघ जी एम. ए. शामिल थे। डाक्टर शर्मा जी ने भरोसा दिलाया कि बाबा राम सिंघ, बाबा खड़क सिंघ, बाबा गुरदित्त सिंघ ऑफ कामागाटामारू फेम, महाराजा ऋपुदमन सिंघ ऑफ नाभा और जरनल मोहन सिंघ आफ आई : एन. ए. का सुनहरे शब्दों में ज़िक्र अवश्य किया जाएगा और देश की आज़ादी को बरकरार रखने में जनरल जगजीत सिंघ (अरोड़ा) लिबेरटर बंगला देश, जैसे हीरे कभी भुलाए नहीं जाएँगे। परन्तु बहुत ही अफसोस की बात है कि काँग्रेस प्रधान साहिब भी अपना विश्वास निभा न सके और 15 अगस्त को, आज़ादी वाले दिन किसी भी देश भक्त सिख को किसी रूप में याद नहीं किया गया।

अभी-अभी मेरी नज़रों में नई छपी पुस्तकें "गाँधी एण्ड हिज़ कैन्टैम्प्रेरीज़' रचयिता बी. सी. राव चौधरी, स्टोरी ऑफ इण्डियन रैवोलूशन' लेखक ए. सी. गुहा और 'इण्डियन फ्रीडम मूवमैन्ट' लेखक शिवाराव निकली हैं, जिन्होंने बेदर्दी और बेरहम के साथ सिखों को नज़र अन्दाज़ किया है।

सिखों के साथ इतिहासकारों और कौमी लीडरों की ओर से यह धोखा क्यों? केवल इस लिए कि सिखों की देश में गिनती कम है और वोट राज्य में अल्प-संख्यकों वालों की बेकदरी आसानी से की जा सकती है ? क्या बहु-संख्यक पर मान करने वालों ने कभी सोचा कि उनकी देश की आज़ादी के लिए कितनी फीसदी कुर्बानियाँ हैं और गाँधी जी को जो आज 'बापू' कह कर पूजा जा रहा है। उनके चलाये आन्दोलन किस कदर सफल हो रहे हैं ?

आज राज्य गद्दियों पर बैठे देश के सम्मानित लीडर क्या जानते नहीं कि सिखों की देश के खातिर ही कुर्बानियाँ हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों जातियों की मिल कर की कुर्बानियों से कहीं अधिक हैं ? फाँसी के रस्से चूमने वाले सिख अधिक, काला पानी जाने वाले भी सिख अधिक और देश में अंग्रेज़ सरकार की जेलों और किले भरने वाले गुरु जी के सिंघ ही ज्यादा है। क्या यह हकीकत नहीं कि देश की आज़ादी की लहर अंग्रेजी राज्य में चलाने की बुनियाद ही बाबा राम सिंघ जी जैसे अनोखे और कुर्बानी के पुतलों बहादुर सिखों ने रखी थी, सरदार अजीत सिंघ के महान इन्कलाबी गीत 'पगड़ी सम्भाल जट्टा' ने सोए हिन्द को जगाया था, गदर पार्टी के पूजनीय व्यक्ति अमरीका और कैनेडा में प्रैस और प्लेटफार्म के द्वारा प्रचार करके संसार की हमदर्दी को गुलाम भारतीयों की ओर खींचा था और आप प्रसिद्ध 'पंजाब कांसप्रेसी केस' में फाँसियों पर चढ़ गए और अन्य काले पानी में अपनी ज़िन्दगी खत्म कर गए और फिर क्या बाबा खड़क सिंघ जी की काबलीयत के साथ नेहरू रिपोर्ट को रद्द करवाना और डैमिनियन स्टेटस की ढीली माँग को रावी नदी की लहरों के हवाले करवाना देश की आज़ादी की शुभ घड़ी को पास न ले आया और अन्त में जरनल मोहन सिंघ की आज़ाद हिन्द फौज की बगावत ने अंग्रेज़ों को भारत छोड़ देने को मजबूर किया ?

मै पूरी ज़िम्मेदारी के साथ कह सकती हूँ कि अगर बहु-संख्यक जातियों का दृष्टिकोण जात्य न होता और देश की आज़ादी के जल्दी ही बाद हमारे कांग्रेसी सिख खुशामदी में बह न जाते तो आज के स्वतन्त्र भारत का इतिहास सिखी के सुनहरी कारनामों से भरा होता। नामधारी लहर, अकाली और बब्बर अकाली लहर और आज़ाद हिन्द फौज की बगावत रशियन और फ्रैंच रैवूलुशनों से किसी तरह भी कम नहीं। भारत के एक फीसदी गैरतमन्द लोगों ने देश को आज़ाद करवाया और आज 99फी सदी वाले अपनी वोट शक्ति के साथ राज्य कर रहे है और आज़ादी के इतिहास को बेरहमी के साथ तोड़ मरोड़ कर पेश किया जा रहा है। यहाँ तक कि गोआ की आज़ादी की माँग के पहले शहीद सरदार करनैल सिंघ जी का कोई नाम लेने को भी तैयार नहीं पर बात तो अब यह है :—

"कौन साईं को कहे ऐसे नहीं ऐसे कर।"